जैन भारती

वर्ष 52 • अंक 1 • जनवरी, 2004

With best compliments from :

KOTHARI METALS LTD.

website : www.kotharimetal.com

SPECIALISTS IN NON FERROUS METALS

Head Office :

'Lords', 7/1 Lord Sinha Road, 5th Floor
Kolkata 700071

Phone : (033) 22828532/8534/7949 ı Fax : (033) 22828462
e-mail : vikashji@cal2.vsnl.net.in

Branches at :

Delhi • Mumbai • Gurgaon • Bhiwadi (Rajasthan)
• Ludhiana (Punjab)

शुभू पटवा
मानद संपादक
•
बच्छराज दूगड़
मानद सह-संपादक

जैन भारती

वर्ष 52 • जनवरी, 2004 • अंक 1

विमर्श

9
यशदेव शल्य
प्रजातंत्रवाद : एक समीक्षा

13
जैनेंद्र कुमार
अस्त्र-शस्त्र बल : क्या बचेगा जीतने वाला

17
श्रीचंद मोहनोत
मनोविज्ञान और अध्यात्मवाद : एक दृष्टि

•

आवरण
अडिग

अनुभूति

21
आचार्यश्री महाप्रज्ञ
अहंकार है अंधकार

25
चतरसिंह मेहता
सुख और दुख : सत्य या सपना

30
मुनि धर्मचन्द 'पीयूष'
मंत्र और ध्वनि तरंग से रोगोपचार

33
कहानी
भीष्म साहनी
सिफारिशी चिट्ठी

38
कविता
हरीश भादानी की कविताएं

प्रसंग

5
शुभू पटवा
अहिंसा अमृत

शीलन

41
गिजुभाई
धर्मेण हीनाः पशुभिः समाना

43
साध्वी लावण्ययशा
जपात् सिद्धि न संशयम्

45
साध्वी गवेषणाश्री
धर्म : उपासना भी; आचरण भी

48
समणी सत्यप्रज्ञा
जीवन और उद्देश्य

51
बालकथा
आशा दुबे
बेटा भी बेटी भी

संपादकीय पता : संपादक, जैन भारती, भीनासर 334403, बीकानेर • फोन : 2270305, 2202505
प्रकाशकीय कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401
प्रधान कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001
सदस्यता शुल्क : वार्षिक 200/- रुपये • त्रैवार्षिक 500/- रुपये • दसवर्षीय 1500/- रुपये

जो व्यक्ति दूसरे के विचारों को बदलने के लिए ही मुंह खोलते हैं, उनके पास भी विचार पूंजी के रूप में ही होते हैं, अर्थात् जड़ रूप में। विचार सदा फलते-फूलते हुए ही जीवित रह सकते हैं, संरक्षित होकर नहीं। आत्मविश्लेषण और संवाद-विचारों को गतिशील रखने के दो तरीके हैं। दोनों ही कठिन हैं, पर दूसरा अपेक्षाकृत कम कठिन है। संवाद विचारों को खुली हवा में लाता है। जीवन का जितना भी अंश उनमें होता है, वह संवाद के दौरान प्रकट हो जाता है, जिस तरह अनेक सीले हुए भोज्य पदार्थ धूप दिखाने से भोग्य बन जाते हैं। यह बात साफ है कि सार्थक संवाद तभी संभव होगा जब व्यक्त किए जा रहे विचारों में कुछ-न-कुछ जीवन बचा होगा। जो विचार जितने अधिक बार संवाद के जरिए प्रकट होंगे, जीवन की संभावना उनमें उतनी ही अधिक होगी; किंतु विचारों को प्रस्तुत करने की अनिवार्य शर्त यह है कि वे पूर्णतः जड़ न हो चुके हों। उनमें जीवन बचा है या नहीं, इसकी कसौटी यह है कि वे संवाद के बाद किसी नई संरचना में ढलने के लिए तैयार हैं या नहीं। यह विचार व्यक्त करने वाले पर निर्भर करेगा कि वह अपने विचारों को संवाद की धारा में मुक्त छोड़ रहा है। विचारों के साथ यदि समूचा व्यक्ति अखाड़े में आ रहा हो तो संवाद की स्थिति नहीं होगी। जो दृश्य पैदा होगा, उसे दो व्यक्तियों की ऐसी कुश्ती कहा जा सकता है जिसमें बाजुओं की जगह खोपड़ियां इस्तेमाल होंगी, संवाद नहीं कहा जा सकता। संवाद विचारों की लड़ाई है, व्यक्तियों की नहीं। वस्तुतः विचारों में जीवन की मात्रा इसी से पता लगाई जा सकती है कि वे स्वयं मैदान में आ रहे हैं या अपने मालिक के साथ आ रहे हैं। पहली दशा में ही वे संवाद पैदा कर सकेंगे, दूसरी स्थिति में वे जड़ होंगे, अतः संवाद का जीवन बन ही नहीं सकते।

—कृष्णकुमार

असंयमी की सेवा असंयम को और संयमी की सेवा संयम को प्रोत्साहन देती है। इन दृष्टियों से यह स्पष्ट है कि सेवा न तो अध्यात्म के सर्वथा अनुकूल है और न सर्वथा प्रतिकूल। सामाजिक भूमिका में रहने वालों के लिए समाज-सेवा का निषेध नहीं हो सकता, भले फिर वह असंयम की सीमा में ही क्यों न हो। मुनियों के लिए भी समाज-सेवा का सर्वथा विधान नहीं किया जा सकता, क्योंकि उनकी भी अपनी कुछ सीमाएं हैं।

समाज और अध्यात्म की रेखाएं समानांतर होते हुए भी मिलती नहीं हैं। सामाजिक प्राणी के लिए असंयम की निवृत्ति की उपयोगिता है और वह भी एक सीमा तक। पर आध्यात्मिक प्राणी के लिए असंयम की निवृत्ति परम धर्म है और वह भी निस्सीम रूप में। प्रवृत्ति और निवृत्ति की भाषा और उनका महत्त्व सबके लिए एक-रूप नहीं हैं।

'भिक्षु विचार दर्शन' से

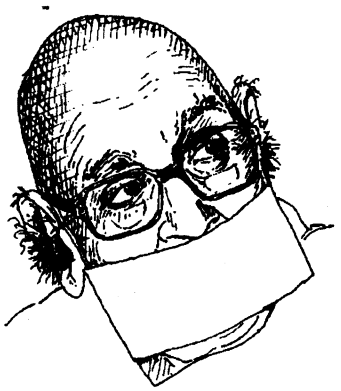

लोकतंत्र सर्वोत्तम शासनतंत्र है, यदि उस तंत्र को संचालित करने वाले और उसका चयन करने वाले व्यक्ति सही हैं। लोकतंत्र सबसे दुर्बल शासनतंत्र है, यदि नेता और जनता सही नहीं हैं। लोकतंत्र में लिखने, बोलने और सोचने की स्वतंत्रता है। पर इसका अर्थ यह तो नहीं है कि व्यक्ति उच्छृंखल हो जाए? लोकतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति को सत्ता के सिंहासन पर बैठने का अधिकार है। पर चरित्रबल और बुद्धिबल से शून्य व्यक्ति के हाथों में सत्ता आती है, तब उसका क्या परिणाम हो सकता है?

मेरा अपना अभिमत यह है कि कोई भी तंत्र, मंत्र या यंत्र तब तक सफल नहीं होगा, जब तक मनुष्य, सही मनुष्य नहीं होगा। तंत्र का संचालक मनुष्य होता है। वह संचालन में जितनी अनैतिकता करेगा, तंत्र उतना ही विकृत होता जाएगा। विकृत तंत्र के आधार पर स्वस्थ समाज या राष्ट्र की परिकल्पना ही बेमानी है।

—आचार्यश्री तुलसी

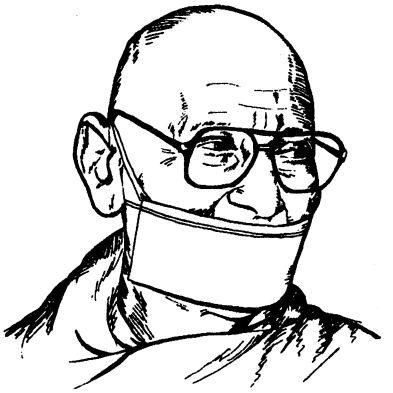

मनोविज्ञान चेतन मन और अवचेतन मन का प्रतिपादन करता है। चेतन मन में जितनी शक्ति है, उससे अनंतगुनी शक्ति है अवचेतन मन में। चेतन मन चालाक है, अवचेतन मन भोला है, पर है अनंतशक्ति का भंडार। यह काम करना है, यह नहीं करना है—चेतन मन आपकी बात सुन लेगा, परंतु करेगा वही जो पहले जंचा हुआ है। अवचेतन मन ऐसा नहीं है। अवचेतन मन को आप जो कहेंगे और यदि उसने उस बात को पकड़ लिया तो वही करेगा जो आपने कहा है। जैसे चेतन मन और अवचेतन मन का अंतर है, वैसे ही स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर की शक्ति में अंतर है। स्थूल शरीर की शक्ति एक पैसा है तो सूक्ष्म शरीर की शक्ति निन्यानवे पैसे है। कितना बड़ा अंतर है! सूक्ष्म शरीर को जागृत करने का अर्थ है—विद्युत भंडार का निर्माण करना। किंतु हमें चलना होगा इसी स्थूल शरीर से। यह हमारी शक्तियों को प्रकट करने का पहला साधन है। साधना की दृष्टि से इस शरीर का मूल्य है। बहुत-सारी दृष्टियों से हमने इसका बहिष्कार किया, क्योंकि यह हमें वासना की ओर प्रेरित करता है। इसीलिए कई बार जीभ को, आंख को हजारों गालियां दी गईं, बुरा-भला कहा गया। कुछ साधकों ने कहा कि आंख को फोड़ देना ही बहुत बड़ी साधना है, क्योंकि यह विकृति का सशक्त माध्यम है। आंखों को फोड़े बिना साधना नहीं हो सकती। वे सचमुच आंख को फोड़ देते हैं—सदा-सदा के लिए अंधे हो जाते हैं।

हमें हमारे स्थूल शरीर की शक्तियों के विषय में पूरी जानकारी होनी चाहिए। हमारे शरीर में मस्तिष्क, पृष्ठरज्जु, कंठ, भृकुटी, तालु, नासाग्र, नाभि, मूलबंध का स्थान तथा पैर के अंगूठे—ये मुख्य केंद्र हैं। इनको जानना आवश्यक है। इनके द्वारा हम स्थूल शरीर को जागृत करें और इसकी जो शक्तियां हैं, उनसे लाभान्वित हों। यह कहा जा सकता है कि यदि हम स्थूल शरीर की शक्तियों के लाख विभाग करें तो हम वर्तमान में केवल दो-चार विभागों की शक्तियों का ही उपयोग कर पाते हैं। शेष शक्तियां सुषुप्त रहती हैं, जागृत नहीं होतीं। हमें इस शक्ति का बोध होना चाहिए।

धर्म और अध्यात्म ने यही तो बताया। साधना यही तो सिखाती है कि तुम अनंतशक्ति के स्रोत हो। तुम अपनी शक्ति-संपदा को देखो, समझो और उसका अनुभव करो। तुम व्यर्थ ही भिखारी बनकर दर-दर क्यों भटकते हो? क्यों भीख मांगते हो? यह भान तभी हो सकता है, जब हमें शरीर का पूरा बोध हो। हम शरीर की उपेक्षा न करें, उसकी अपेक्षा के अनुरूप उसे सम्मान दें, आदर दें, अनंतशक्ति का स्रोत हमें उपलब्ध हो जाएगा।

—आचार्यश्री महाप्रज्ञ

जैन भारती
जनवरी, 2004

प्रसंग

अहिंसा अमृत

भले अब यह लगने लगा हो कि अहिंसा की बात करना एक 'फैशन' होता जा रहा है और वे लोग या राष्ट्र भी, जो विध्वंस और हिंसा के उपकरणों में सबसे अधिक संपन्न हैं, पर अहिंसा की बात करते रहते हैं और भले वे लोग विनाश में ही समस्याओं का समाधान देखते हैं तथा इसी के बल पर शांति की चाह रखते हैं, पर अहिंसा में उनका निःसंकोच विश्वास भी परिलक्षित होता हैं। वे यह भी स्वीकारते हैं कि दुनिया में अमन व शांति के लिए अहिंसा ही कारगर उपाय हो सकता है। कथनी और करनी के ऐसे भेद-भरे मंतव्यों को हम निरा द्वंद्व मान सकते हैं, पर ऐसे वक्तव्यों से यह तो स्पष्ट हो ही जाता है कि उनका अहिंसा से प्रतिरोध नहीं है। अलबत्ता हम मान सकते हैं कि वास्तविक तौर पर अहिंसा को स्वीकारने की सामर्थ्य अभी उनमें नहीं आई है, बल्कि कहना चाहिए कि अहिंसा की सामर्थ्य को तो वे स्वीकारते हैं, हां, अंगीकार करने का साहस अभी उनमें नहीं है।

हमारा देश भारत अहिंसा, शांति और प्रेम का पुजारी माना गया है। महावीर, बुद्ध और गांधी ने अहिंसा की अलख को जगाया था। गांधी ने तो अहिंसा के प्रयोग तक किए। स्वतंत्रता के आंदोलन में लगातार यह सावधानी रखी गई कि हिंसा का सहारा नहीं लिया जाए। स्वतंत्रता संग्राम में सक्रिय वे लोग जो बिना बल प्रयोग के आजादी प्राप्त कर लेने के प्रति शंकित थे और हिंसा का सहारा लिया करते थे—उनसे गहरे मतभेद भी रहे, पर हिंसा के रास्ते से आजादी लेने के किसी प्रयास पर बापू ने कभी सहमति नहीं जताई। उनके प्रति सम्मान होते हुए भी गांधी कभी सहमत नहीं हो सके कि आजादी हासिल करने के लिए हिंसा का सहारा लिया जाए। महात्मा गांधी ने अहिंसा से ही अपना राजनीतिक उद्देश्य प्राप्त किया। राजनीतिक उद्देश्य को पाने के लिए ऐसा प्रयोग विरल है। यह इसीलिए हो सका कि अहिंसा में उनकी अटूट और निर्विवाद आस्था थी। अहिंसा में ऐसा विश्वास व आस्था सार्वजनिक या राजनीतिक क्षेत्र में गांधी को छोड़ अन्यत्र दुर्लभ है।

पर यह दुर्लभ क्यों है? गांधी के जीवन-काल में भी और बाद में भी उनके किसी अनुयाई अथवा उनके विचारों में आस्था रखने वाले किसी-एक में भी अहिंसा के प्रति उन जैसी आस्था या विश्वास क्यों नजर नहीं आ रहा? 'गांधी पोसाळ' में क्या ऐसा

प्रशिक्षण हो ही नहीं सका? हमें यह कबूल करना चाहिए। इसीलिए हम देख रहे हैं कि—राजनीतिक क्षेत्र हो या कि सामाजिक क्षेत्र—महात्मा गांधी के अहिंसा के प्रयोग देश में कहीं चलते या होते नजर नहीं आ रहे। देश में जो हालात आज हम देख रहे हैं, वे ही इस बात का प्रमाण हैं कि यदि ये प्रयोग चल रहे होते तो भारत की धरती पर हिंसा और रक्तपात की घटनाएं जैसी होती रही हैं, न होती। अंतरराष्ट्रीय विवादों के कारण हो रहे प्रत्यक्ष-प्रच्छन्न युद्धों को एक बार छोड़ भी दें, पर हमारे आंतरिक हालातों पर गौर करें तो हम पाएंगे कि सांप्रदायिकता, जातिवाद और सत्ता हासिल करने की होड़ ने आजादी के बाद कम रक्तपात नहीं कराया है। इसे लेकर चिंताएं भी खूब होती रही हैं, पर उन सबका असर जन-जीवन पर कितना पड़ा है—हम सभी जानते हैं। जाहिर है कि गांधीकाल में और बाद में भी अहिंसा को लेकर जीवन-प्रयोग के स्तर पर गंभीरता से नहीं सोचा गया। अहिंसा जीवन का अमृत बन सके—व्यावहारिक स्तर पर ऐसे प्रयोग नहीं हो पाए।

वर्तमान समय में इन सब बातों को लेकर आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने प्रयोग के स्तर पर गंभीरता से सोचना शुरू किया है। एक जैन साधु होने के नाते अहिंसा महाव्रत तो उन्होंने कोई 8-9 वर्ष की उम्र में ही अंगीकार कर लिया था और अपने सयानेपन के इन 75-80 वर्षों से वे अहिंसा-यात्रा ही कर रहे हैं, पर पिछले कुछेक वर्षों से जिस तरह के प्रयोगों पर उन्होंने अपनी मेधा केंद्रित की और उससे जो निष्पत्तियां इन वर्षों में निकली हैं—अब वे उन्हीं पर सर्वाधिक बल देने लगे हैं। पिछले 2-3 साल से उनकी 'अहिंसा-यात्रा' काफी चर्चित रही है। यह एक तरह का सायास प्रयत्न है और इसे अच्छी बात मानना होगा कि अहिंसा-यात्रा (दिसंबर, 2001) से एक ओर जहां गांव-गांव में उनके प्रयोगों के संदेश पहुंचे हैं, वहीं इस अहिंसा-यात्रा ने देश के शीर्ष नेतृत्वकर्ताओं का ध्यान भी खींचा है कि प्रेक्षाध्यान और जीवन-विज्ञान जैसी प्रयोग-विधियों से अहिंसा जीवन-अमृत बन सकती है। यह बात लोगों के गले उतरने लगी है। दिसंबर, 2001 से लेकर अब तक कोई तीन हजार किलोमीटर के आस-पास उनकी अहिंसा-पद-यात्रा हो चुकी है। बीते दो वर्षों में 750 से भी अधिक गांवों और बड़े शहरों में उनका विचरण हो चुका है। सांप्रदायिकता की आग में जल रहे गुजरात के अमदाबाद, बड़ौदरा और सूरत सरीखे छोटे-बड़े शहरों से गुजरते हुए मुंबई महानगर और अब महाराष्ट्र की ओर उनकी पद-यात्रा अविराम चल रही है। भारत के राष्ट्रपति से लेकर विभिन्न राजनीतिक दलों और विश्व हिंदू परिषद से लेकर मुस्लिम समाज के शीर्षस्थ समाज-प्रमुखों का ध्यान भी इस अहिंसा-यात्रा की ओर गया है।

हम नए ईसवी वर्ष (वर्ष 2004) में प्रवेश कर रहे हैं। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की घोषित अहिंसा-यात्रा (वर्ष 2001-2004) का यह आखिरी साल होगा। वे महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश से होते हुए इस वर्ष जून-जुलाई तक राजस्थान में होंगे। उनके प्रयोगों का अधिकांश अवधि-काल राजस्थान ही रहा है। यह यात्रा जिस निश्चित उद्देश्य को लेकर उन्होंने शुरू की, वह भले पूर्ण हो जाए, पर पांच महाव्रतधारी इस यायावर की चिरंतन-यात्रा तो चलती ही रहेगी।

इस यात्रा (2001-2004) का उनका निश्चित उद्देश्य 'अहिंसा सव्वभूयखेमंकरी' में निहित है। स्वस्थ समाज की परिकल्पना करते हुए आचार्यश्री महाप्रज्ञजी कहते हैं—'आदमी के भीतर जो हिंसा के भाव हैं, उनकी धुलाई होनी चाहिए, जिससे चेतना में उठने वाली हिंसा की चिनगारियां समाप्त हो जाएं।' एक संन्यासी और पांच महाव्रतधारी होते हुए भी बहुत व्यावहारिक स्तर पर उतरते हुए वे कहते हैं—'देश की सुरक्षा के लिए 'हिंसा-प्रशिक्षण' का क्रम चल रहा है, पर घर-परिवार में होने वाली तनावजनित समस्याओं के समाधान के लिए 'अहिंसा-प्रशिक्षण' का उपक्रम नहीं चल रहा है। इस ओर ध्यान दिए बिना स्वस्थ समाज-निर्माण की बात नहीं सोची जा सकती।' वे ऐसे भावों और चेतना के विकास पर अधिक जोर देते हुए इसके लिए व्यापक स्तर पर प्रशिक्षणों की बात करते हैं।

प्रयोग के स्तर पर तो वे अपना काम कर चुके और उसकी निष्पत्तियां भी सामने हैं। इस अहिंसा-यात्रा का प्रयोजन अपने इन्हीं प्रयोगों को व्यापकतर बनाना रहा है। वे इस बात को समझते हैं कि एक परिव्राजक के रूप में उनकी सीमाएं हैं। राजनीतिक इच्छाशक्ति को प्रबल रूप में जागृत करने के साथ सामाजिक दृष्टि से ये प्रयोग सर्वमान्य हों—अपनी सीमा में रहते हुए वे इस ओर सचेष्ट हैं। राष्ट्रपतिजी का 'वीजन 2020' राजनीतिक-सामाजिक इच्छाशक्ति की ओर बढ़ता हुआ एक कदम मान सकते हैं। हां! अभी और चलना है; आचार्यश्री महाप्रज्ञजी की चिरंतन यात्रा गतिशील रहे—नए ईसवी वर्ष (2004) के अवसर पर यही विनम्र कामना।

इस अंक से 'जैन भारती' 52वें वर्ष में प्रवेश ले रही है, हम अपने पाठकों का भी अनन्य साधुवाद करते हैं।

—शुभू पटवा

शिखर

जिस व्यक्ति व समुदाय के चिंतन और चरित्र में समता के दर्शन के स्थान पर अमनीषा-जन्य विषमता का स्वार्थपरक दर्शन हो और स्वतंत्रता के व्यवहार के स्थान पर स्वयं की स्वतंत्र समृद्धि हेतु अन्य व्यक्तियों व समुदाय के स्वतंत्र जीवन की समृद्धि पर मन्युमय प्रहार व कुठाराघात करने वाला अमानुषीय एवं विवेकहीन व्यवहार हो—वह व्यक्ति 'मानव' नहीं है और वह समुदाय 'मानवीय' नहीं है। सारतः व्यास की दृष्टि में न तो मानव का अभ्युदय समाज के अभ्युदय की बलिवेदी पर संभव है और न ही समाज अपने उत्थान हेतु मानव के वैयक्तिक स्वातंत्र्य एवं अभ्युदय की अवज्ञा कर सकता है। दोनों का परस्पर अभिन्नत्व है : मानव के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास ऐसे सामाजिक सुव्यवस्थापन के अभाव में संभव नहीं है जिसमें समत्व-दर्शन और स्वातंत्र्य-जीवन की मानवीय प्रतिष्ठा न हो, पारस्परिकता के आत्मीय विस्तार का नाम ही धर्म है, और पारस्परिकता के अनात्मीय संकोच का नाम अधर्म। धर्ममय जीवन प्रेम से परिपूर्ण सर्वहित की कामना का पोषक रहता है; अधर्ममय जीवन मन्युमयता से सिक्त स्वहितकारी गतिविधियों की षड्यंत्रकारी नित्य नई संरचना करता रहता है।

—डी. डी. हर्ष

प्रजातंत्रवाद : एक समीक्षा

❑ ❑

❑ ऋषभदेव शास्त्री ❑

प्रजातंत्रवाद का सबसे बड़ा गुण यह कहा जाता है कि इसमें राज्याधिकार किसी एक व्यक्ति के हाथ में नहीं होता। इसमें जनता के द्वारा निर्वाचित अनेक व्यक्ति जनता के प्रतिनिधियों के रूप में राज्य-शासन का संचालन करते हैं। इस तंत्र में यदृच्छा के लिए, मनमानेपन के लिए, कोई अवकाश नहीं होता जो राजतंत्र या अधिनायकवाद में होता है। इसमें जन-प्रतिनिधियों को जनता के निर्देश के अनुसार कार्य करना होता है। यों तो 'जनता' का अर्थ 'जन-समूह' भी हो सकता है और यह यदृच्छा 'भीड़ का उन्माद' रूप हो सकती है, किंतु प्रजातंत्र ऐसे तंत्र में प्रतिष्ठित होता है जिसमें नियामक किसी भी प्रकार की यदृच्छा नहीं होती बल्कि युक्ति और विवेक, दूसरे शब्दों में धर्म, होता है। इसके लिए युक्ति से नियमित एक तंत्र की रचना की जाती है और इस तंत्र से इच्छा, वासना और उन्माद को बाहर रखने के लिए एक विधान बनाया जाता है, जो विधान अपने क्रियान्वयन के लिए लोकसभा, न्यायपालिका और कार्य-पालिका की स्थापना करता है। एक अन्य संस्था 'प्रचार माध्यम' होती है, जो राज्य और विधान से स्वतंत्र निर्मित होती है और इन पर निगाह रखती है। इस प्रकार प्रजातंत्र में शासक अंततः विधान होता है और विधान का आधार युक्ति—तर्क और विवेक (धर्म) होता है।

राज्य की यह अद्‌भुत रूप से कुशल और श्रेष्ठ व्यवस्था प्रतीत होती है, जिसका मनुष्य ने राज्य-संस्था विषयक चिंतन और प्रयोग के सुदीर्घ इतिहास के अंत में धरती पर देव-रूप गौरवर्णी जाति के माध्यम से आज से लगभग तीन शताब्दी पहले साक्षात्कार किया। किंतु यह विचारणीय है कि प्रजातंत्रवाद व्यवहार में वास्तव में ऐसा ही है और क्या व्यवहार में इसके ऐसा नहीं होने का कारण इसके सिद्धांत में ही कहीं कोई बड़ा दोष होना नहीं है? द्रष्टव्य है कि यों सिद्धांततः तो राज-तंत्र भी एक पूर्णतः निर्दोष तंत्र ही है। उसका आदर्श राम-राज्य है जो पूर्णतः धर्म पर प्रतिष्ठित और प्रजा के हित की ओर ही उद्दिष्ट है। राजनीतिशास्त्र के प्राचीन, कम-से-कम भारतीय, ग्रंथों में राजा के लिए स्वेच्छाचारिता कहीं भी स्वीकृत नहीं है, बल्कि राजा के लिए यतींद्रिय, धर्म-परायण और उदात्त होने की अपेक्षा है। इतना ही नहीं, उससे धर्म-विरुद्ध कार्य होने पर उसके लिए दंड की व्यवस्था भी है (द्रष्टव्य. मनुस्मृति, अ. 8/336)। महाराजा रणजीतसिंह के, एक वेश्या के प्रेम में पड़ने पर, वृक्ष से बांध कर कोड़ों से मारे जाने की घटना अभी लगभग 250 साल ही पुरानी है। अब, जहां तक व्यवहार का संबंध है, उसमें दोष किस व्यवस्था में कम हो सकते हैं और किस में अधिक, यह एक विवादास्पद बात हो सकती है। किंतु यहां हम इस तुलना में नहीं जाएंगे, क्योंकि

प्राचीन काल में मनुष्य की दृष्टि धार्मिक-आध्यात्मिक और नैतिक होने पर भी ऐसा बहुत-कुछ था जिसके अनौचित्य को वह नहीं देख पाया था। ऊपर हम शंबूक-वध और एकलव्य की कथाओं का उल्लेख कर ही आए हैं, इसी प्रकार ग्रीस के तीन महानतम दार्शनिक और नीति-निपुण ज्ञानी सुकरात, प्लेटो और अरस्तू यह नहीं देख पाए थे कि दास भी मनुष्य होते हैं। किंतु आज हम यह सहज ही

भारत गणतंत्र के 54वें वर्ष पर विशेष

देख सकते हैं कि ये दोनों दृष्टियां सत्य देख पाने में असमर्थ थीं। किंतु यह जो हम देख पा रहे हैं वह किन्हीं सेक्युलर मूल्यों के कारण नहीं है बल्कि मनुष्य में सत्य-गवेषी सहज दृष्टि के विकास के कारण है। इसी कारण यह बुद्ध और महावीर भी देख सके, कबीर और नानक भी देख सके और स्वामी दयानंद, विवेकानंद और महात्मा गांधी भी देख सके।

आधुनिक प्रौद्योगिकी पर आधारित सभ्यता में राज्य संस्था का प्रजातंत्र से अधिक स्वीकार्य दूसरा कोई रूप कल्पनीय भी नहीं है। किंतु इस सभ्यता ने जिस प्रजातंत्रवाद को हमारे लिए प्रस्तुत किया है वह क्या है—यहां हम उस पर संक्षेप में विचार करेंगे।

प्रजातंत्रवाद में सबसे आधारभूत सैद्धांतिक दोष यह है कि यह सब व्यक्तियों की समानता को पूर्वगृहीत करता है, जो व्यक्ति इसके अनुसार स्वभावतः जीव-धर्मी, अहं-केंद्रित, स्व-अर्थान्वेषी और आत्मपर्यंत (इन्वोयलेबल) होते हैं। किंतु जैसाकि व्यवहार में हम देखते हैं, न सब व्यक्ति समान होते हैं और न आत्मपर्यंत ही होते हैं। तब कहा जा सकता है कि यह पूर्वग्रह तथ्यात्मक नहीं है बल्कि मूल्यात्मक है। किंतु इसके अनुसार मनुष्य स्वभाव से जीव-धर्मी और स्वार्थान्वेषी है। तब इसमें मूल्य कैसा? इस मूल्य-दृष्टि को ये सेक्युलर (ऐहिकतावादी) और उदार कहते हैं। अब, इस दृष्टि की ऐहिकता तो स्पष्ट है, और 'धर्म' का अर्थ इस्लामी-क्रिस्तानी 'धर्मांधता' के पर्यायवाची के रूप में लेते हुए इसे अपेक्षाकृत उदार और वरणीय भी कहा जा सकता है, किंतु 'धर्म' का अर्थ 'ऋत और सत्य' दृष्टि लेने पर इसे कैसे वरणीय कहा जा सकता है? स्वभावतः यह दृष्टि 'समाज' को 'स्वार्थान्वेषी व्यक्तियों के समझौते पर आधारित सह-अवस्थिति' के रूप में ही देख सकती है। अब, यह दृष्टि 'उदार' किस अर्थ में हो सकती है, यह हम पूंजीवाद और इस सिद्धांत की प्रतिपादक जाति के दूसरी जातियों के साथ आज तक के व्यवहार के इतिहास को देखकर अनुमान कर सकते हैं। अब, ऐसी दृष्टि के अनुसार सिद्धांततः व्यक्तियों को समान मानने पर व्यक्तियों में विद्यमान वास्तविक गुण-भेद, योग्यता-भेद और सामर्थ्य-भेद को कोई नैतिक आधार नहीं दिया जा सकता। इसके विपरीत जिस वर्ण-व्यवस्था की आज हम इतनी निंदा करते हैं और जो व्यवस्था जाति-परक होकर वास्तव में ही भयानक रूप से निंदनीय हो भी गई थी, वह अपनी मूल दृष्टि में व्यक्तियों में पाए जाने वाले स्वाभाविक भेद की नैतिक व्यवस्था ही थी। यही कारण है कि सामाजिक अन्याय के सबसे उग्र विरोधी महात्मा गांधी वर्ण-व्यवस्था के समर्थक थे। इस व्यवस्था में राज्य-संचालन और प्रजा की रक्षा के कर्तव्य क्षत्रिय के, अर्थोत्पादन के कर्तव्य कृषक और व्यापारी के, शिल्प और भृत्यता के कर्म शूद्र के निश्चित किए गए थे और सब से उच्च वर्ण ब्राह्मण के लिए विद्या के अर्जन और दान का कर्तव्य निश्चित था और इसके अनुकूल चर्या के लिए उससे यह अपेक्षा थी कि वह धन-संपत्ति, भौतिक बल और लौकिक सुखों के पीछे नहीं दौड़ेगा। मनु ने ही सबसे उच्च ब्राह्मण उसे कहा है जिसके पास अगले समय के लिए खाना भी नहीं है। इस प्रकार यह व्यवस्था सर्वोच्च वर्ण को ज्ञान और धर्म को समर्पित रूप में देखती थी और शेष वर्णों को दूसरे सामाजिक कर्मों के कर्तव्य-भावना के साथ निर्वाह के रूप में। वर्ण का आधार जन्म नहीं कर्म देखा गया था। इस प्रकार सिद्धांततः ब्राह्मण की संतान शूद्र और शूद्र की संतान ब्राह्मण हो सकती थी। व्यवहार में ऐसा नहीं था और व्यवहार में यह वर्ण-व्यवस्था जाति-प्रथा बनी, यह एक दूसरी बात है। किंतु तब भी क्षत्रिय को ब्राह्मण के ऊपर उत्कर्ष पाने के लिए 'राजा जनक' बनने का अधिकार था और शूद्र को ज्ञान के बल पर 'कबीर' बनने का अधिकार था—'तू बाम्मन मैं कासि का जुलाहा, बूझहु मोर गियाना।' भगवद्गीता में भी वर्ण-व्यवस्था को इसी रूप में देखा गया है। मूलतः यह गुण-कर्म-स्वभाव पर आधारित वर्ण-व्यवस्था जन्म पर आधारित जाति-प्रथा बन गई। इस जाति-प्रथा की निकृष्टतम अभिव्यक्ति महर्षि वाल्मीकि और महाकवि कालिदास द्वारा क्रमशः रामायण और रघुवंश में राम से तपस्या करने की 'अनधिकार चेष्टा' करते शंबूक का वध करवाने और महर्षि वेदव्यास द्वारा महाभारत में द्रोणाचार्य द्वारा एकलव्य का अंगूठा कटवाने में देखी जा सकती है। किंतु द्रष्टव्य है कि इस जाति-प्रथा में बहुत-सा अन्याय और एक सामाजिक जड़ता होने पर भी इसकी दृष्टि नैतिक ही थी और इस प्रकार इसमें नैतिक दृष्टि की असफलता थी, प्रजातंत्रवादी व्यवस्था के समान नीति-निरपेक्षता नहीं थी। प्रजातंत्रवाद ने पहले की धुंधली और विपर्यस्त नैतिक दृष्टि का विस्थापन जिस दृष्टि से किया वह स्वरूपतः नैतिकता से रहित और शुद्ध रूप से स्वार्थ और बल पर आधारित है। हमारे देश में आज प्रजातंत्र को श्रेय दिया जा रहा है कि इसके कारण दलित वर्ग ऊपर आ रहे हैं। किंतु इस 'ऊपर आने में' दृष्टि स्वार्थ और अनैतिक बल की ही है। यह सही है कि उसके बावजूद यह जो-कुछ हो रहा है उसमें यह अच्छा है कि परंपरया दलित वर्ग दलन से मुक्त हो रहा है, किंतु यह मुक्ति जिस रूप में हो रही है वह जंगल राज का रूप है, मानवोचित व्यवस्था का रूप नहीं है। यह वर्ग आज किसी ऐसी न्याय-व्यवस्था को लाने में प्रयत्नशील नहीं है जो पिछली अन्यायपूर्ण व्यवस्था को विस्थापित करे, बल्कि ऐसे भौतिक बल की खोज में है जो अन्याय कर सकने की पिछली व्यवस्था को अन्याय कर सकने की दूसरी व्यवस्था से विस्थापित कर सके। आज की औद्योगिक-ऐहिकतावादी (सेक्युलर)

सभ्यता के पास दूसरी कोई दृष्टि है ही नहीं। इसी से पूंजीवाद का विकल्प मार्क्सवाद आर्थिक अन्याय दूर करने के प्रयास में उससे भी कहीं अधिक दुर्दांत अन्याय का हेतु सिद्ध हुआ। रोजमर्रा के जीवन में भी हम आज यही देख रहे हैं—मजदूर संगठित होकर पूंजीपति के अत्याचार का प्रति-अत्याचार से प्रतिकार करते हैं, रिक्शाचालक परिस्थिति का लाभ उठाकर नियत से कई गुणा तक भाड़ा लेते हैं, राज्य-कर्मचारी अपने कर्तव्य के प्रति तनिक भी निष्ठा रखे बिना मनमाने अधिकारों के लिए हड़ताल करते हैं। यही प्रजातंत्रवाद है। नैतिक-आध्यात्मिक दृष्टि के बिना, या कहें समाज का आधार स्वार्थों का समझौता मानने पर, यही सब हो सकता है। प्रजातंत्रवाद की समाज-दृष्टि, व्यक्ति-दृष्टि, मानव-दृष्टि और इस प्रकार मानवाधिकार-दृष्टि आज यही है। यह दृष्टि मनुष्य को पशु से केवल इसी रूप में अलग देखती है कि यह मनुष्य के अधिकारों का क्षेत्र पशु से व्यापकतर देखती है, इस दृष्टि से नहीं कि यह मनुष्य का लक्षण धर्म को (इसके 'उचित-अनुचित विवेक' के अर्थ में) देखती है। इसने 'धर्म' को भी आज मताग्रह का वाचक बनाकर इसका दुरुपयोग उसी प्रकार किया है जिस प्रकार जूडो-क्रिस्तानी धर्मांधता में होता था—इस मूल अंतर के साथ कि तब इसका आधार 'ईश्वर की आज्ञा' के नाम पर अंधियाई दृष्टि थी और आज वर्गमूलक स्वार्थ हैं। ध्यातव्य है कि आज जिन 'सेक्युलर वेल्यूज' की बात की जाती है वे धर्मांधता से तो अवश्य मुक्त हैं किंतु उनमें मूल्यों को आधार देने के लिए कोई दृष्टि नहीं है।

यों मनुष्य में किसी भी दृष्टि के रहते सहज रूप से एक आध्यात्मिक बोध, 'स्व' के ऊपर 'सर्वपरकता' को देखने की और औचित्य-अनौचित्य के निरपेक्ष विवेक की सामर्थ्य रहती है, जिसके कारण ही प्रजातंत्रवाद की दृष्टि के ऐहिकतावादी रहने पर भी वह सामाजिक न्याय आदि मूल्यों को देख पाता है और ये मूल्य स्वार्थों की अंधी दौड़ के ऊपर किसी-न-किसी प्रकार बने रहते हैं। अपना अतिक्रमण कर सकने की इसी योग्यता के कारण मनुष्य अपनी दृष्टि के दोषों को भी देख पाता है। प्राचीन काल में मनुष्य की दृष्टि धार्मिक-आध्यात्मिक और नैतिक होने पर भी ऐसा बहुत-कुछ था जिसके अनौचित्य को वह नहीं देख पाया था। ऊपर हम शंबूक-वध और एकलव्य की कथाओं का उल्लेख कर ही आए हैं, इसी प्रकार ग्रीस के तीन महानतम दार्शनिक और नीति-निपुण ज्ञानी सुकरात, प्लेटो और अरस्तू यह नहीं देख पाए थे कि दास भी मनुष्य होते हैं। किंतु आज हम यह सहज ही देख सकते हैं कि ये दोनों दृष्टियां सत्य देख पाने में असमर्थ थीं। किंतु यह जो हम देख पा रहे हैं वह किन्हीं सेक्युलर मूल्यों के कारण नहीं है बल्कि मनुष्य में सत्य-गवेषी सहज दृष्टि के विकास के कारण है। इसी कारण यह बुद्ध और महावीर भी देख सके, कबीर और नानक भी देख सके और स्वामी दयानंद, विवेकानंद और महात्मा गांधी भी देख सके। इनमें कोई भी सेक्युलर दृष्टि का कायल नहीं था। दूसरी ओर यह सेक्युलर दृष्टि उन दूसरे प्रकार की असमानताओं और अन्यायों को देख पाने में उसी प्रकार असमर्थ है जिस प्रकार सब जग को सिया-राममय देखने वाली मुक्त दृष्टि थी। उदाहरणतः प्रजातंत्रवाद की उद्भावक यह गोरी जाति अगौर जातियों को उसी प्रकार हीन या मानवेतर देखती रही है जिस प्रकार प्राचीन काल में ग्रीक दासों को देखते थे, किंतु इस प्रजातंत्रवादी, उदार और सब मनुष्यों को समान देखने वाली जाति ने इन अगौरों पर जो अत्याचार किए हैं वह तो प्राचीनों की पौराणिक कल्पना के लिए भी गम्य नहीं था। इसके अतिरिक्त, आज जो आर्थिक असमानता है और जैसे आज के अर्थ-संपन्न लोग इस अर्थ का दुरुपयोग करते हैं, वह भी पुराने समय में अकल्पनीय था। इसी प्रकार राज्य-शक्ति का दुरुपयोग आज के प्रजातंत्रों में उससे कहीं अधिक होता है जितना पुराने सामंतों में देखा जाता था, क्योंकि उस समय राज्य का कार्य-क्षेत्र समाज में उतना व्यापक नहीं था जितना आज है। यह जो कहा गया है कि 'राजा रूठे, नगरी राखे' वह प्राचीन काल में वास्तविक बात थी। लोग नाराज होकर राजा की नगरी छोड़ भी जाते थे और नगरी में रहते हुए भी अधिक मन-मरजी से रहते थे, किंतु आज ऐसा नहीं हो सकता। इस सबके ऊपर तुर्रा यह कि आज के ये राजा उसी प्रजा को खुल्लमखुल्ला लूटते हैं जिनके ये प्रतिनिधि होने का दावा करते हैं और प्रजा सचमुच में इन्हीं को, और यह सब जानते हुए भी, अपना प्रतिनिधि चुनती है। कहा जा सकता है कि यह प्रजातंत्रवाद का सैद्धांतिक दोष नहीं है, व्यावहारिक दोष है। किंतु प्रजातंत्रवाद की सिद्धांत-दृष्टि में ही ये अंतर्निहित दोष हैं कि यह व्यवहार में उससे बहुत भिन्न कुछ नहीं हो सकता जो वह है। यहां उल्लेखनीय है कि महात्मा गांधी ने पार्लियामेंट को वेश्या कहा था। वह इसके सैद्धांतिक रूप ही के कारण, क्योंकि यह बहुमत की चेरी होती है। आगे व्यवहार में इसका वेश्या-रूप कितना विकृत हो सकता है यह हम अपनी पार्लियामेंट के व्यवहार से देख सकते हैं।

अब रही प्रजातंत्र के चौथे पाए प्रचार-माध्यम की बात। यह पाया प्रमुखतः समाज की निकृष्ट प्रवृत्तियों के

प्रचार का माध्यम है और इससे इन्हीं को अधिकांश में बढ़ावा मिलता है। इसका प्रथम उद्देश्य अपनी लोक-प्रियता स्थापित करना होता है, जिसे यह लोमहर्षक, आपराधिक, कामोत्तेजक और अन्य सब प्रकार की अनैतिक बातों को समाचार रूप में प्रस्तुत कर सिद्ध करता है। उदाहरणतः इनमें राजनेताओं, अभिनेताओं, खिलाड़ियों, और ऐसे ही दूसरे तत्त्वों को मूर्धाभिषिक्त किया जाता है, चिंतकों, साहित्यिकों या मनीषियों को नहीं। कहा जा सकता है कि इनके लिए दूसरे माध्यम होते हैं—पत्रिकाएं और पुस्तकें। सही है। किंतु प्रश्न है कि यह माध्यम, जो कि प्रजातंत्र का चौथा पाया है, यह क्या सिद्ध करता है? इस पाए के आविर्भाव से पहले समाज में दार्शनिक, कवि और संत ही प्रतिष्ठा पाते थे, राजा, अभिनेता, खिलाड़ी और गणिकाएं नहीं। निश्चय ही समाज में ये सब भी थे, किंतु सामाजिक दोषों या सहज-प्राकृतिक प्रवृत्तियों के रूप में, प्रतिष्ठितों के रूप में नहीं।

प्रजातंत्र में कानून के शासन की बात भी की जाती है। किंतु वास्तव में यह एक दूसरी वेश्या है जो निर्लज्जता से शठों और साधन-संपन्नों का ही साथ देती है। अवश्य कभी-कभार कोई इसके घेरे में आ जाते हैं, किंतु प्रथम तो इनमें वे ही इसके घेरे में आते हैं जिन्हें इनके इन्हीं के जैसे शत्रु लाते हैं, शेष कोई इसके घेरे में नहीं आते। दूसरे, ये भी साधन-संपन्न होने पर कभी इसकी पकड़ में नहीं आते। इतना ही नहीं, कानून के बावजूद ऐसे लोग चुनाव जीतकर पुनः राज्य-पदों पर प्रतिष्ठित हो जाते हैं। इससे देखा जा सकता है कि 'राज्य के प्रजा के द्वारा और प्रजा के लिए होने' का क्या अर्थ है। किंतु सबसे बड़ी बात यह है कि किसी के पास साधन होने पर ही कानून उसका साथ देता है और तब गलत साथ भी दे सकता है, उसके बिना तो यह उसके विपरीत भी जा सकता है।

सो, यह है प्रजातंत्र, जिसमें आज हम रह रहे हैं और जिसका गुणगान करते नहीं थकते। यह सही है कि इसके आज उपलब्ध विकल्प इससे भी बुरे हैं, या कम-से-कम, इससे अच्छे नहीं हैं, किंतु उनके अच्छे नहीं होने और हो सकने का कारण युग-परिस्थितियां ही हैं जो प्रजातांत्रिक राज्य-प्रणाली की जनक हैं। ये परिस्थितियां स्वचालित यंत्रों के आविष्कार के साथ उपजे पूंजीवाद के साथ आरंभ हुईं, इन्हीं परिस्थितियों ने पूंजीवाद के प्रतिपक्ष साम्यवाद और जर्मनी तथा इटली आदि की तानाशाहियों को जन्म दिया। आज ये परिस्थितियां क्रमशः कुशलतर और व्यापकतर होते यंत्रों के साथ और उग्र होकर भूमंडलीकरण और उससे विकसित होते आसुरी प्रजातंत्र, दानवी प्रतिस्पर्धा और इनके सहगामी उग्रवाद और आपराधिक योगवाद को जन्म दे रही हैं।

यहां पूछा जा सकता है कि इससे निकलने का रास्ता क्या है? संभवतः कोई नहीं है। मनुष्य यंत्रवाद के इस विस्फोट को झेलकर अपने में प्रतिष्ठित हो सकता है, ऐसा हमें नहीं लगता। ❖

सार्वजनिक संस्था का अर्थ है, लोगों की स्वीकृति और लोगों के धन से चलने वाली संस्था। ऐसी संस्था को जब लोगों की सहायता न मिले, तो उसे जीवित रहने का अधिकार ही नहीं रहता। देखा यह गया है कि स्थाई सम्पत्ति के भरोसे चलने वाली संस्था लोकमत से स्वतंत्र हो जाती है और कितनी ही बार वह उलटा आचरण भी करती है। हिंदुस्तान में हमें पग-पग पर इसका अनुभव होता है। कितनी ही धार्मिक मानी जाने वाली संस्थाओं के हिसाब-किताब का कोई ठिकाना ही नहीं रहता। उनके ट्रस्टी ही उनके मालिक बन बैठे हैं और वे किसी के प्रति उत्तरदाई भी नहीं हैं। जिस तरह प्रकृति स्वयं प्रतिदिन उत्पन्न करती और प्रतिदिन खाती है, वैसी ही व्यवस्था सार्वजनिक संस्थाओं की भी होनी चाहिए, इसमें मुझे कोई शंका नहीं है। जिस संस्था को लोग मदद देने के लिए तैयार न हो, उसे सार्वजनिक संस्था के रूप में जीवित रहने का अधिकार ही नहीं है। प्रतिवर्ष मिलने वाला चंदा ही उन संस्थाओं की अपनी लोकप्रियता और उनके संचालकों की प्रामाणिकता की कसौटी है, और मेरी यह राय है कि हरएक संस्था को इस कसौटी पर कसा जाना चाहिए।

—महात्मा गांधी

अस्त्र-शस्त्र बल : क्या बचेगा जीतने वाला

❑ इंद्र कुमार ❑

जीवन की गति स्थूल से सूक्ष्म की ओर है। सामाजिक जीवन की भी सार्थकता इसमें है कि वह जिस शक्ति से चलता है और नियंत्रित होता है, वह स्थूल कम रहे और उत्तरोतर सूक्ष्मता का आकलन करती जाए। इसी को दूसरे शब्दों में यों कहें कि वह हिंसा से अहिंसा की ओर बढ़ती जाए।

विज्ञान का विकास यही है। वह नई-नई शक्तियों का आविष्कार करता जाता है। हर नई शक्ति पहले से सूक्ष्मतर होती है। इसीलिए उसमें अधिक वेग और प्रभाव होता है। पहले ठोस भारपन में शक्ति को कूता जाता था। अर्थात्, शक्ति का अनुमान परिमाण होता था। जिसका जितना वजन, उतना ही वह सशक्त। इसी को अंग्रेजी में 'मॉस' कहते थे। लेकिन यहां से आरंभ करके विज्ञान बढ़ता ही गया है। भाप की शक्ति का हमने आविष्कार किया और उससे एक नए युग का अविर्भाव हो गया। उसके बाद विद्युत्शक्ति का हमने पता लगा लिया। उस कारण जीवन एक साथ तीव्र और विस्तृत हो गया। अब विज्ञान उससे भी सूक्ष्मता में उतर रहा है। जान पड़ता है, मनुष्य के हाथ में उस कारण अमित सत्ता और विभुता आ जाने वाली है। चंद्र-सूर्य और नक्षत्र मंडल से अब पृथ्वीवासी मानव का सजीव संबंध पैदा हो जाएगा। थोड़े दिन बाद लोग वहां आने-जाने लगेंगे और जो सीमा मनुष्य को अपने लिए अनिवार्य मालूम होती थी, वह मिट चुकी होगी। वह भूवासी से प्रवासी और आगे सौर-मंडल-वासी बन जाएगा। सच ही जब तक मनुष्य असीम से अपने को अभिन्न नहीं पा लेगा, उसी प्रकार अनुभव और वर्तन नहीं करने लगेगा, तब तक वह चैन न लेगा और उन्नति करता ही जाएगा।

पुरानी धर्म और अध्यात्म की भाषा में हम जानते थे कि शरीर से मानव ससीम हो, अन्यथा वह असीम है। आत्मा की ओर से वह अनंत है, मुक्त है, निर्बंध है। चिंतन और मनन की भाषा में, काव्यादर्श के रूप में यह मानते हुए भी अनुभव हम अपनी सीमितता का और स्वल्पता का ही करते थे। विज्ञान को हाथ में लेकर आज जैसे पूरी यथार्थता और वास्तविकता के साथ मनुष्य कह सकता है कि वह ब्रह्ममय है, ब्रह्मांड उससे भिन्न नहीं है, बल्कि पूरी तरह तत्सम है। पुरुष और परमेश्वर के बीच की एकता, जो रहस्यवाद और इस तरह एक आदर्शवाद का विषय थी, अब विज्ञान की भूमिका पर आ उतरी है। मनुष्य प्रत्यक्ष देखता है कि अणु में वही सब है जो ब्रह्मांड में है। दूसरे शब्दों में अणु स्वयं में कुछ है ही नहीं, जो इस चराचर ब्रह्मांड में व्याप्त है वह उस मूल शक्ति का अंकरूप ही है।

विज्ञान की खोज जारी है कि वह मूल शक्ति है क्या? यह खोज निरंतर जारी ही रहेगी, कारण जानने वाला स्वयं

❖

अहिंसा के प्रवर्तन को धर्म के और नैतिकता के क्षेत्र से आगे बढ़कर समाज और राज्य के क्षेत्र में आना होगा। अगर राज्य और समाज की भूमिका पर प्रबल का ही बोलबाला रहने वाला है, निर्बल समझे जाने वाले को भय में दब-सिकुड़कर ही रहना बदा है, तो यह हालत ज्यादा देर तक टिकने वाली नहीं है।

30 जनवरी : बापू का पुण्य स्मरण करते हुए

विज्ञान ने, हमारे अपने मस्तिष्क और अनुभूति के विकास ने, हमको परस्पर इतना निकट ला दिया है कि शरीर, संख्या, सेना, शस्त्र के बल का आधार हमें ही झूठा मालूम होने लगा है। फिर उसका खतरा भी सामने आ गया है। उस आधार पर अब जीतने वाला कोई बचेगा ही नहीं, वह बल अंत में स्वयं जिताने वाले को हराएगा। वह बल आत्मघाती बल है। उसके सहारे जो उठेगा वह उसी के सहारे अंत में मरेगा भी। इस तरह हिम्मत बांधकर किसी समाज और राष्ट्र को उस बल के भरोसे के त्याग को संभव कर दिखलाना होगा।

❖

भिन्न जो नहीं है। ज्ञेय के रूप में वह आदिशक्ति सदा अगम ही रहने वाली है। इसलिए उस अगम और अज्ञेय के प्रति ज्ञान की यात्रा अटूट चलती जाएगी और उसमें से मनुष्य अनेक विकास और विस्तार पाता जाएगा।

तो यही अवस्था हमारे सामाजिक जीवन की है। आदिकाल से चलते-चलते हमारा सामाजिक जीवन उस जगह तक आ गया है जहाँ यह पहचाने बिना हम रह नहीं सकते कि एक राष्ट्र के हृदय में कुशंका, भय या हिंसा हो, और यदि उसका स्फुलिंग फूटकर अंतरराष्ट्रीय क्षेत्र में आ पड़े तो विश्व में प्रलय ही आ जाएगी। राष्ट्ररूप में संगठित और एकत्रित मानव-समुदाय के भीतर सुलगती हुई हिंसा का कण कितना भयंकर है, इसका अनुभव प्रत्येक को आता जा रहा है। अब तक हिंसक बल के आधार पर हम अपनी उलझनों को काटते आए हैं। जब राजनीति-कूटनीति उलझ गई और आपस में किसी फैसले पर आ नहीं सकी, तो हम झट से लड़ लेते रहे हैं कि अच्छा, हो जाए फैसला—या तुम (सही) या मैं। माना जाता रहा है कि जिसने दूसरे को हरा दिया, मार गिराया वह पक्ष सही था, दूसरा गलत था। इस निर्बल की हार या प्रबल की जीत को हम प्रकृति का नियम मानते रहे थे। प्रकृति से आगे हमने सभ्य जीवन का भी अंत में वही नियम स्वीकार किया था। आज तक वही नियम चलता आया है। उसी नियम के अधीन राष्ट्र-राज्यों में अब भी फौजें बन रही हैं और अस्त्र-शस्त्र तैयार किए जा रहे हैं। भारत कोई अलग देश नहीं है और वह भी उस सभ्यता के महारोग का अंग ही है। गांधीजी की बात दूसरी थी। वह रोग के भाग नहीं, अपने में 'औषध' रूप थे। इसी से उन्होंने अपने को राष्ट्र से अथवा राष्ट्र-राज्य से अभिन्न नहीं माना, भिन्न भी माना। उस जमाने में, जबकि स्वराज्य की मांग बेहद तीव्र थी, गांधी ने कहने का साहस रखा कि हिंसा से मिलने वाला भारत का स्वराज्य मुझे नहीं चाहिए। आगे उन्होंने बताया कि जो स्वराज्य हिंसा के जोर से मिलने वाला होगा वह जल्दी ही साबित हो जाएगा कि भीतर से स्वराज्य था ही नहीं। ऐसा स्वराज्य कम-से-कम भारतीय तो नहीं होगा। राजनीतिक स्वराज्य से किसी और का काम चल जाए तो भले चल जाए, भारत का काम उससे गहरा है, आंतरिक है। वह उसी स्वराज्य से सही तौर पर पूरा होगा जो अहिंसा के बल से प्राप्त होगा और आगे भी अपने संचालन के लिए बल के रूप में अहिंसा को ही स्वीकार करेगा।

यह श्रद्धा गांधी की थी, कांग्रेस की नहीं थी। कांग्रेस राजकाजी संस्था थी और उसका दायित्व था कि अंग्रेज जाए तो वह देश का राजकाज हाथ में ले। देश की भाषा से आगे जाना उसे उपलब्ध न था। इसलिए यद्यपि कांग्रेस को गांधी का आशीर्वाद था तो भी यदि वह उस श्रद्धा पर न चल सके, या न चलना चाहे, तो उसे दोष नहीं दिया जा सकता।

लेकिन यह स्पष्ट है कि अहिंसा के प्रवर्तन को धर्म के और नैतिकता के क्षेत्र से आगे बढ़कर समाज और राज्य के क्षेत्र में आना होगा। अगर राज्य और समाज की भूमिका पर प्रबल का ही बोलबाला रहने वाला है, निर्बल समझे जाने वाले को भय में दब-सिकुड़कर ही रहना बदा है, तो यह हालत ज्यादा देर तक टिकने वाली नहीं है। विज्ञान ने, हमारे अपने मस्तिष्क और अनुभूति के विकास ने, हमको परस्पर इतना निकट ला दिया है कि शरीर, संख्या, सेना, शस्त्र के बल का आधार हमें ही झूठा मालूम होने लगा है। फिर उसका खतरा भी सामने आ गया है। उस आधार पर अब जीतने वाला कोई बचेगा ही नहीं, वह बल अंत में स्वयं जिताने वाले को हराएगा। वह बल आत्मघाती बल है। उसके सहारे जो उठेगा वह उसी के सहारे अंत में मरेगा भी। इस तरह हिम्मत बांधकर किसी समाज और राष्ट्र को उस बल के भरोसे के त्याग को संभव कर दिखलाना होगा। सामने वाला निःशस्त्र होना स्वीकार करे तो हम भी शस्त्र समाप्त करने को तैयार हैं—इस वृत्ति से तो हम चल ही रहे हैं। सब चाहते हैं कि हमें अस्त्र-शस्त्र का प्रयोग न करना पड़े—सभी चाहते हैं कि ऐसी स्थिति बने कि अणुशक्ति से बम न बनाए जाएं बल्कि वह विधायक और रचनात्मक कामों में आ सके। पर इस चाह के बावजूद बमों के अतिरिक्त और किसी काम के लिए अणुशक्ति खाली नहीं है और उससे भीषण से भीषणतम अस्त्र-शस्त्र बनाने की होड़-सी लगी है। स्वयं इस होड़ से ही छोटे देशों को प्रकट हो जाना चाहिए कि सुरक्षा अब मामूली बारूद वाले हथियारों पर निर्भर नहीं है, न वह सैन्य संस्था पर निर्भर है। वे देश आसानी से अपने सैनिकों में कमी कर रहे हैं जिनके पास आधुनिक शस्त्रास्त्र हैं। अमुक संख्या में 'मैन-पावर' (मनुष्य-शक्ति) मिलकर एक 'हार्सपावर' (अश्व-शक्ति) बनती है और एक मशीन में असंख्य हार्सपावर (अश्व-शक्ति) हो सकती है। इस तरह हजारों-लाखों आदमियों से एक मशीन बढ़ जाती है। जहां एक आदमी एक बंदूक संभाल सकता है वहां एक दूरमारक अस्त्र की तुलना में हजार-लाख आदमी नगण्य हो जाते हैं। इस होड़ में मनुष्य अंत में हारता है और पशु-पावर (अश्व-शक्ति) जीतती है। यानी, मनुष्य को समाप्त करके पशु ही रह जाने को शेष रहता है।

समाज का जीवन जिस शक्ति से चलता हो, अंत में वही शक्ति कार्य संचालन और सुरक्षा के लिए राज्य के पास रह जाती है। यों अहिंसा राज्य की ओर से नहीं आ सकती। लेकिन यह भी सही है कि राज्य जितना हिंसा के बल पर आधार रखेगा समाज में भी उस बल की उतनी ही प्रतिष्ठा होगी।

आज भ्रष्टाचार की बहुत शिकायत है। आदमी अनुभव करता है कि हाथ में हथकंडा हो, कुछ तिकड़म हो, पहुंच हों, तो समाज में नीचे से ऊंचे की ओर उठा जा सकता है। पास में अगर सिर्फ भलाई है, परिश्रम है, नेकनीयती है तो इन चीजों के भरोसे नीचे ही रहकर संतोष मानना होगा। यदि समाज की हालत यह है कि नेक और परिश्रमी नीचे रह जाता और चतुर-चालाक ऊपर चढ़ जाता है तो यह अवस्था पुलिस और न्यायालय के जरिए संभल नहीं सकती। राज्य को पहचानना होगा कि यह संकट व्यवस्था का, तंत्र का नहीं है, मूल्य का ही संकट है। डिमाक्रेसी या जनतंत्र जो मतसंख्या को प्राप्त कर निश्शंक हो जाती है, जनमत के दावे पर ही जनमत से मुक्त और स्वतंत्र हो जाती है, अंत में तानाशाही की आवश्यकता को प्रकट कर आती है। यही क्यों, स्वयं वह तानाशाही होती है। इसमें व्यक्ति और उसका चरित्र गौण हो जाता है—समूहता को प्रधानता मिल जाती है। गुट होना चाहिए, फिर उसका स्तर चाहे कुछ भी हो, बस आपका स्थान समाज और राज्य में बनता चला जाता है। यदि समाज-जीवन के चलन और नियमन का मूल्य यह दल एवं गुट-संगठन हो जाए तो कानून और उपदेश क्या मदद कर सकता है!

गांधीजी के काम का निशाना वही था। वह मूल्य-परिवर्तन चाहते थे। राज्य-परिवर्तन तो अपने-आप में कोई बड़ी चीज ही नहीं है। उसको क्रांति समझना धोखा खाना है। इतिहास में ऐसे धोखे लोगों को बहुत मिले हैं। राज्य-क्रांतियां हुई हैं और तत्काल बाद उनसे निराशा हो चली है। गांधीजी ने इन कुशल राजनीतिक मानस रखकर चलने वालों को बताया कि वे धोखे में न रहें, न धोखा दें। राजनीतिक शब्दावली के हेरफेर से यथार्थता बदल नहीं जाती है। इससे उस शब्द-जाल की माया में समय उतना न दें। कारण, वह समय छल में जाता, छल का वातावरण रचने में लगता है। हाथ के से मंच का काम महत्त्व का बन जाता है। तब जीवन में विषमता न आए, मुसीबत न बढ़े, तो क्या हो! ऐसा होना तो स्वाभाविक ही हो जाता है। गांधीजी से इसलिए राजनीति में रचनात्मक पक्ष का उदय हुआ। मंच पर बोलने से ज्यादा हाथ की मेहनत को महत्त्व मिला। राजनीति में एक नए प्रकार के नेतृत्व का उदय हुआ। यह व्यक्ति सीधा-सादा था, उसकी अपनी जरूरतें कम थीं। इसके पास पैसा नहीं होता था। मामूली खर्च में उसका काम हो जाता था। नीचे आदमी के समकक्ष होकर चलने में वह गौरव मानता था। वह तीसरे दर्जे में चलता था। मामूली से मालूमी घर में रहता था—नौकर रख नहीं सकता था। सब काम सफाई-धुलाई का अपने हाथ से करता था और यह आदमी समाज में आदर पाता था। उसके कारण सादगी, संयम, त्याग, अपरिग्रह का मूल्य समाज के शरीर में रचता जाता था। देखा जाता था कि सद्‌गुण ऊपर आ रहा है, दुर्गुण स्वयं दब रहा है। अपराध की संख्या उससे अनायास कम होती थी और उपद्रव-उत्पात उतने न होते थे। विद्यार्थी-समस्या, यूनियन-समस्या इतनी विकट न थी। न धनिक की ऐश्वर्य-समस्या उतनी दीखती थी। जीवन में उत्साह, उत्कर्ष काम करता था। स्पर्धा की काट की जगह सहयोग की मिठास थी। वह हालत आज नहीं है। तंत्र तो बहुत फैल गया है—सरकारी कर्मचारियों की संख्या कई-कई गुनी हो गई है। कानून भी सख्त बन रहे हैं। कोशिश भी भ्रष्टाचार को मिटाने की पहले से जोरशोर से की जा रही है। पर फल इष्ट नहीं हो रहा है तो इसीलिए कि रोग गहरा है—सामाजिक मूल्यों में विषमता आ गई है।

उन्नति में अनिवार्य गर्भित देखा जाएगा कि वह स्थूल से सूक्ष्म के महत्त्व की ओर जा रही है। मनुष्य की उन्नति की जांच आखिर क्या है? वह यही तो है कि उसके संबंध दूर-पास कितने विस्तृत और सामंजस्यपूर्ण हैं। धन की बहुतायतता से तो सीधे मनुष्य की सफलता को नहीं नापा जा सकता। धन सफलता का लक्षण इसलिए है कि वह आदमी की सामाजिक साख का द्योतक है। यदि धन हो और साख न हो, तो वही धन काटने लग जाता है। मनुष्य के बारे में जो सच है वही देश के बारे में भी सच होना चाहिए। देश का बढ़ा-चढ़ा उत्पादन उसका बल है, अगर उसकी साख भी बढ़ी-चढ़ी हो। भारत देश को अवश्य गौरव प्राप्त है कि उससे आशाएं ऊंची हैं। इस संदर्भ में उसकी पंचवर्षीय योजना के अधीन उसकी व्यापार-नीति को सफल गिना जाएगा। लेकिन उसकी आंतरिक साख निरंतर कच्ची पड़ती जा रही है!

मैं यह मानने की अनुमति चाहता हूं कि भारत की अंतरराष्ट्रीय साख ऊंची इसलिए है कि वहां हमारी नीति भरसक न्याय और अहिंसा के प्रति तत्पर रही, आंतरिक साख यदि ऊंची उतनी नहीं कही जा सकती तो उसका कारण भी यही है कि वहां वह उतनी स्वच्छ नहीं रही।

वैदेशिक संबंधों में हम गुटबंदी में नहीं आए हैं। आंतरिक संबंधों में हम गुटबंदी से बाहर और ऊपर नहीं जा रहे हैं।

सहयोग और स्नेह के संबंध किस को प्रिय और मान्य नहीं हैं। लेकिन देखते हैं कि संबंधों में स्नेह और सहयोग का माप रखना आसान नहीं हो पाता—अर्थात् यह केवल भावना का प्रश्न नहीं है। उस में स्थिति और परिस्थिति का हाथ रहता है। इसीलिए गांधीजी नैतिक और आध्यात्मिक भूमिका पर कहीं ऊंचे नहीं बने रहे, बल्कि युद्धात्मक और राजनीतिक भूमि पर अधिक कर्मशील दिखाई दिए। इन गांधी को लोगों ने कर्मवीर कहने से आरंभ किया। लेकिन आगे जाकर दीखा की वह महात्मा अधिक है—कर्म से अधिक उनकी महत्ता आत्मा में है। अर्थात् दूसरे सन्तों और महात्माओं से उनमें यह अंतर था कि उन्होंने एकांत मन और भावना पर ही ध्यान को केंद्रित नहीं किया, बल्कि उनके अनुबंध और संदर्भ को, स्थिति और परिस्थिति को भी आध्यात्मिकता का संस्कार देते जाने की सावधानी रखी।

गांधीजी की आध्यात्मिकता का यह पक्ष अत्यंत वैज्ञानिक है। समाज-नेता और नेताओं के लिए वह बहुत ही विचारणीय और मननीय होना चाहिए। परिस्थिति में क्रांति लाने की बात नेताजन करते हैं और उसी प्रयत्न में लगे रहते हैं। वे कुछ कर जाते भी हैं। लेकिन फिर इतिहास द्वारा भुला दिए जाते हैं। कारण, मूल्यों में वे तनिक भी परिवर्तन नहीं कर पाते। दूसरे, वे लोग भी हैं जो सूक्ष्म में अर्थात् मूल्यों के क्षेत्र में काम करते हैं। ऐसे दार्शनिक ऋषि-मनीषी पुरुषों को याद रखा जाता है, लेकिन पुस्तकों और शब्दों में अधिक। अपने समय के दीन-दुखी त्रस्त जनों के प्रति वे कुछ नहीं कर जाते, वहां वे असमर्थ और नगण्य ही बने रहते हैं। गांधी का ध्यान मूल्यों में रहा, साथ ही परिस्थितियों की नब्ज पर से उनका हाथ नहीं हट पाया। वहां से उन्होंने एक नई अर्थ-रचना और समाज-रचना का दर्शन दिया।

जब हम उस सहयोग, स्नेह और सत्याग्रह की शक्ति से ही समाज के काम चलाने का आग्रह रखेंगे तब देखेंगे कि एक नवीन प्रकार की राष्ट्र-नीति और राष्ट्रीय अर्थ-नीति हमको प्राप्त होती है। आज राष्ट्र आपस में एक कंटीली रेखा बीच में डालकर अपनी सुरक्षा बांधते हैं। इस तरह पड़ोसी राष्ट्र के संबंध में स्पर्द्धा और शंका छूट नहीं पाती। सीमा-रेखा के दोनों ओर चौकी-पहरा रखना पड़ता है। व्यापार भी इसी नीति के अधीन चलाया जाता है। हर राष्ट्र आयात घटाने और निर्यात बढ़ाने की भाषा में सोचने को लाचार होता है। तब उसकी अर्थ-नीति विदेशी मुद्रा से इतनी जुड़ जाती है कि उत्पादन का उपभोग से संबंध टूट जाता है। यानी, आवश्यकता के हिसाब से हम उत्पादन नहीं करते, बल्कि मुद्रार्जन के हिसाब से करते हैं। ऐसे चलकर सारे देश की अर्थ-नीति औंधी और उल्टी तक बन जाती है। तब निपट गरीबी और घोर अमीरी—दोनों साथ-साथ चलती देखी जाती हैं। उत्पादन अधीन आ जाता है सुरक्षा की आवश्यकता के। तब जी-तोड़ मेहनत करने वाला किसान भूखा रह सकता है, बंदूक चलाने के सिवा कुछ न करने वाले सैनिक के लिए हर किस्म की सुख-सुविधा का सामान सजा रहता है!

जब तक हम अपनी रसोई का काम लकड़ी-कोयले से चलाएंगे तब तक वहां धुआं भरे, तो हम किसी से शिकायत नहीं कर सकते। वह डिमोक्रेसी या जनतंत्र, जो जन-मन से अलग सिर्फ गिनती के जनमत से अपना काम चलाती है, बार-बार पुलिस और फौज की जरूरत में पड़े तो इसमें कुछ अनहोनी बात नहीं है। सच्चे जनतंत्र की बुनियाद गहरी चाहिए। केवल संख्या-बल की नहीं, बल्कि नैतिक बल की। मत की नहीं, विश्वास की। गणना की नहीं, श्रद्धा की। ऐसे जनतंत्र में शासक उत्तरोत्तर सेवक होता जाएगा। शक्ति, जिससे काम होगा, स्पर्द्धा से दहकती और भभकती हुई नहीं होगी, बल्कि हार्दिकता से स्निग्ध और मधुर होगी। उसमें से धुआं नहीं निकलेगा। गुटबंदी कम होगी और आधार जीवन के असल मूल्यों का अर्थात् स्नेह और सेवा का होगा। तब संबंधों में तनाव की जगह सद्भाव बढ़ेगा और वह केवल व्यक्तिगत क्षेत्र में नहीं, बल्कि अंतर्देशीय क्षेत्र तक में। तब माना जाएगा कि गांधीजी को हमने शब्द से नहीं कर्म से भी मान दिया है। ❖

योगी को युक्त या योगमग्न तब कहा जाता है, जब वह संसार के परिवर्तनों से ऊपर भगवान में ध्यान लगाए हुए हो। इस प्रकार का योगी प्रतीतियों के पीछे विद्यमान वास्तविकता (ब्रह्म) के ज्ञान और अनुभव से तृप्त हुआ रहता है। वह संसार की वस्तुओं और घटनाओं से अक्षुब्ध रहता है और इसीलिए इस परिवर्तनशील संसार की घटनाओं के प्रति समचित्त कहा जाता है।

—डॉ. राधाकृष्णन्

मनोविज्ञान और अध्यात्मवाद : एक दृष्टि

❑ श्रीचंद मोहनोत ❑

मनुष्य सबसे विकसित प्राणी है, अतः मनुष्य की व्याख्या करना सबसे जटिल है। मनुष्य का मस्तिष्क, ग्रंथितंत्र एवं नाड़ीतंत्र सबसे अधिक विकसित है। क्षमताओं का अवतरण भी उसमें सबसे अधिक होता है। कर्मशास्त्र, योगशास्त्र, मानसशास्त्र (साईकोलॉजी), शरीरशास्त्र (एनेटोमी) और शरीरक्रियाशास्त्र (फिजीयोलोजी) के तुलनात्मक अध्ययन से ही इसकी पूर्ण व्याख्या की जा सकती है।

मानसिक परिवर्तन केवल उद्दीपन एवं परिवेश (एनविरोनमेंट) के ही कारण नहीं होते। उनमें नाड़ीतंत्र, जैविक विद्युत, जैविक रसायन और अंतःस्रावी ग्रंथियों के स्राव का भी योग होता है। यह सारे हमारे स्थूल शरीर के अवयव हैं। इसके पीछे हमारा सूक्ष्म शरीर क्रियाशील रहता है और उसमें निरंतर होने वाले कर्म के स्पंदन परिणमन अथवा परिवर्तन की क्रिया को चालू रखते हैं। परिवर्तन की इस प्रक्रिया में कर्म के स्पंदन, मन की चंचलता, शरीर के संस्थान—यह सभी सहभागी होते हैं। इसलिए किसी एक शास्त्र के द्वारा, हम परिवर्तन की प्रक्रिया का सर्वांगीण विश्लेषण नहीं कर सकते। ध्यान की प्रक्रिया द्वारा मानसिक परिवर्तनों पर नियंत्रण किया जा सकता है, इसलिए योगशास्त्र भी उपेक्षित नहीं किया जा सकता।

योगशास्त्र के अनुसार हमारे शरीर में ऊर्जा का मुख्य केंद्र रीढ़ है। इसी में इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियां चलती हैं। सुषुम्ना के भीतर चित्रा, वज्रा एवं ब्रह्मा सूक्ष्म नाड़ियां चलती हैं जो सूक्ष्म प्राणों का मार्ग है। यह नीचे के भाग मूलाधार से शुरू होकर ब्रह्मरंध्र तक जाता है। रीढ़ हमारा प्राणवाहक है।

स्थूल प्राण भी पांच हैं जिन्हें अपान, समान, उदान, प्राण एवं व्यान कहा जाता है। अपान नाभि के नीचे के भागों में, समान नाभि के चारों ओर, उदान गले के ऊपरी भाग में, प्राण फेफड़ों में एवं व्यान पूरे शरीर में व्याप्त रहता है। शरीर में तीन प्रवृत्तियां बताई गई हैं—सत, रज और तम। ये प्रवृत्तियां हमारे प्राणों को संचालित करती हैं।

कई बार ऐसा होता है—इच्छाएं उठती हैं, लेकिन उनकी पूर्ति नहीं होती। दबी इच्छाएं हमारे प्राणों को निरंतर प्रभावित करती रहती हैं। इसी प्रकार इर्ष्या, द्वेष, भय, घृणा, लोभ आदि के स्पंदन हमारे प्राणों को प्रभावित करते हैं। इनसे हमारा स्वभाव बदलता है और बदले हुए स्वभाव में वे प्रकट होती हैं।

असाध्य रोगों के क्षेत्र में योगशास्त्र में वर्णित चक्रों पर शोध की जा रही है। विकृत चक्रों के उपचार से किस प्रकार असाध्य रोग प्रभावित होते हैं। व्यक्ति के भावों में जैसे-जैसे परिवर्तन आता है, विभिन्न चक्रों का

संवेग-नियंत्रण की विद्या आज शिक्षातंत्र में प्रायः उपेक्षित है। रोग-प्रतिरोधात्मक क्षमता को कमजोर करने वाला मुख्य कारण भी यह भावात्मक असंतुलन ही है। भावों से स्वस्थ व संतुलित व्यक्ति 100 वर्ष से भी अधिक सुख से जी सकता है। आज वैज्ञानिकों की मान्यता है कि मनुष्य का हृदय एवं यकृत 140-150 वर्ष तक अबाध गति से कार्य कर सकता है। भावात्मक असंतुलन ग्रंथितंत्र को प्रभावित करता है। ग्रंथितंत्र के असंतुलित स्राव हमारे जींस को प्रभावित करते हैं। जींस में असंतुलन व्याधि-उत्पादक है। प्रतिरोधात्मक शक्ति को क्षीण कर देता है। परिणाम— जीवनशक्ति का समय से पहले क्षीण होना है। आज व्यक्ति का ध्यान जितना बाह्य कीटाणुओं की रोकथाम पर है, उतना भीतर के विघटनकारी तत्त्वों पर नहीं है।

स्वरूप विकृत होता है। समय के साथ विकृति स्थाई रूप ले लेती है। चक्रों के रंग दूषित हो जाते हैं। वे सिकुड़ भी जाते हैं और फट भी जाते हैं। परिणाम शरीर से व्यक्त हो जाता है। जिस प्रकार बीमारियां स्थूल शरीर से जुड़ी हुई हैं, उसी प्रकार चक्र सूक्ष्म शरीर से जुड़े रहते हैं। चक्र अपने आस-पास के वातावरण एवं आकाश से ऊर्जा ग्रहण करते हैं, विसर्जन करते हैं। अंतःस्रावी ग्रंथियों के स्रावों में परिवर्तन के हेतु बनते हैं। हमारे आभामंडल के साथ यह चक्र हर धरातल पर जुड़े रहते हैं, अतः आस-पास के वातावरण में उपस्थित सभी सूक्ष्मतम भावों का प्रभाव इन पर पड़ता है एवं ये भी वातावरण को प्रभावित करते हैं। हर चक्र का अपना रंग भी होता है। हमारे शरीर के प्रत्येक अंग का संबंध चक्र एवं सात परत वाले आभामंडल से रहता है।

अदृश्य व्याधियों की जानकारी स्थूल शरीर में उनकी अभिव्यक्ति के बाद होती है। शल्य अथवा अन्य चिकित्सा से उभरे हुए रोगों को उपशांत किया जा सकता है। समूल नष्ट नहीं किया जा सकता।

योगशास्त्र में वर्णित चक्र एवं शरीरशास्त्र में वर्णित ग्रंथितंत्र में पूर्ण समानता एवं एकरूपता है।

जीवन दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—भोगात्मक और योगात्मक। दोनों का आधार भाव है। भावात्मक रोग, जिन्हें उपाधि कहा जाता है, वे ही आधि और व्याधि के हेतु हैं। सकारात्मक भाव विधायक चिंतन योगात्मक जीवन के सूचक हैं और वे हमें समाधि की ओर ले जाते हैं। विधायक विचार राग-द्वेष, लोभ, मद, मोह, भय, क्षोभ, रति, अरति, भोगात्मक वासना का परिष्कार करते हैं। मन उपशांत रहने लगता है। असीम आनंद की अनुभूति होने लग जाती है। तनाव समाप्त होने लगता है। भय, चिंता, घबराहट आदि उपशांत हो जाते हैं। मन की चंचलता पर अवरोध लग जाता है। मानसिक शांति का अनुभव होने लग जाता है। ग्रंथियों के स्राव पूर्ण नियंत्रण में हो जाते हैं, परिणामस्वरूप रोग उत्पन्न ही नहीं होते अथवा उपशांत हो जाते हैं। असाध्य बीमारियां होती ही नहीं अथवा उनकी अनुभूति नष्टप्राय हो जाती है।

नकारात्मक भाव--निषेधात्मक भाव अथवा नकारात्मक वृत्तियां राग-द्वेष से अभिभूत रहती हैं। वे विध्वंसकारी प्रवृत्तियों में संलग्न रखती हैं। भोग की भावना को प्रश्रय देती रहती हैं। नई-नई इच्छाओं को जन्म देती रहती हैं। इच्छाएं अनंत हैं, असीम हैं, जबकि पदार्थ-भोग की वस्तुएं ससीम हैं। ससीम असीम को तृप्त नहीं कर सकता। अतृप्ति की भावना असंतोष एवं आग्रह को बढ़ाती हैं। समाज में अराजकता का कारण बन जाती है। विषमता पनपने लगती है। असंतोष जब उग्र रूप ले लेता है तब व्यक्ति व्यक्ति से भयभीत रहने लग जाता है। समस्याएं नित्य नए रूप में प्रकट होती रहती हैं।

नकारात्मक भावों एवं सकारात्मक भावों का सामंजस्य सभी समस्याओं का समाधान है। मन की चंचलता पूर्णरूपेण समाप्त नहीं हो सकती। सकारात्मक भाव मन की चंचलता पर लगाम रख सकते हैं। आधि, व्याधि, उपाधियों से त्राणरहित कर सकते हैं।

आज विकास का नया धरातल पैदा हो गया है। आभामंडल और ऊर्जा केंद्रों के चित्र लिए जा सकते हैं। क्रिलियन फोटोग्राफी ने इसे संभव कर दिखाया है। भावनाओं के आधार पर जो परिवर्तन आभामंडल में आता है, उसे देखा जा सकता है। व्यक्ति के सूक्ष्म धरातलों का अध्ययन किया जा सकता है।

संवेग-नियंत्रण की विद्या आज शिक्षातंत्र में प्रायः उपेक्षित है। रोग-प्रतिरोधात्मक क्षमता को कमजोर करने वाला मुख्य कारण भी यह भावात्मक असंतुलन ही है। भावों से स्वस्थ व संतुलित व्यक्ति 100 वर्ष से भी अधिक सुख से जी सकता है। आज वैज्ञानिकों की मान्यता है कि मनुष्य का हृदय एवं यकृत 140-150 वर्ष तक अबाध गति से कार्य कर सकता है। भावात्मक असंतुलन ग्रंथितंत्र को प्रभावित करता है। ग्रंथितंत्र के असंतुलित स्राव हमारे जींस को प्रभावित करते हैं। जींस में असंतुलन व्याधि-उत्पादक है। प्रतिरोधात्मक शक्ति को क्षीण कर देता है। परिणाम—जीवनशक्ति का समय से पहले क्षीण होना है। आज व्यक्ति का ध्यान जितना बाह्य कीटाणुओं की रोकथाम पर है, उतना भीतर के विघटनकारी तत्त्वों पर नहीं है। बाहरी परिस्थिति के बदलाव से भी ज्यादा आवश्यक है भीतरी परिस्थिति का बदलाव। सर्वांगीण स्वस्थता के लिए सर्वांगीण दृष्टि से प्रयास अपेक्षित हैं।

कायोत्सर्ग—शरीर-शिथिलीकरण एवं प्रेक्षाध्यान वर्तमान में जीने की पद्धति है। जो वर्तमान क्षण को तनावमुक्त व अच्छे ढंग से जीता है, उसका वर्तमान एवं भविष्य—दोनों सुखमय बन जाते हैं। कर्मशास्त्र, योगशास्त्र एवं वर्तमान का मनोवैज्ञानिक शास्त्र—तीनों, संवेगों पर नियंत्रण एवं तनावमुक्तता को जीवन की आधारशिला मानते हैं। प्रश्न है, इसे क्रियान्वित कैसे किया जाए?

शेष पृष्ठ 50 पर

अनुभूति

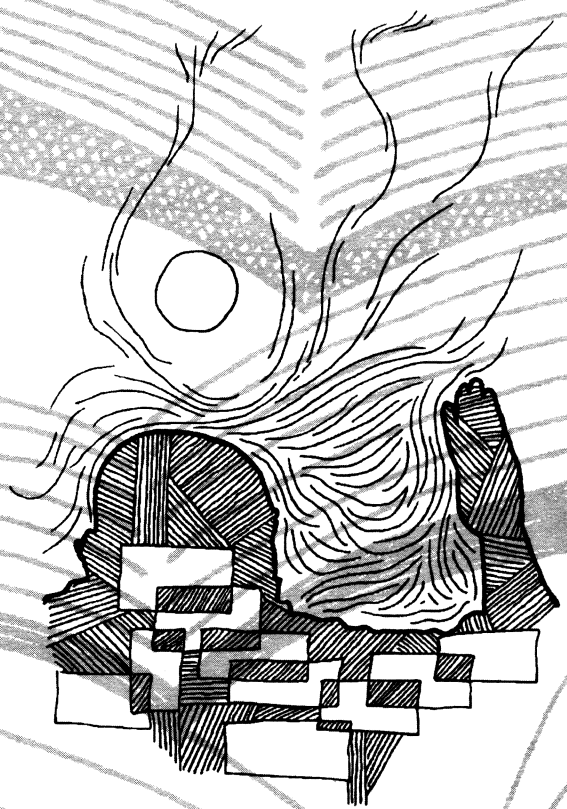

भारतीय मन की कुछ अपनी विशेषताएं हैं। वह साहित्य को अपने आत्मीय परमप्रिय मित्र की भांति देखना चाहता है, जो रास्ते चलते उससे बात कर सके, सलाह दे सके, काट-छांट कर सके, प्रेरित कर सके, पीठ सहला सके और मार्गदर्शन कर सके। भारतीय साहित्य में उन लोगों की वाणी को ही प्रधानता मिली है, जिन्होंने आध्यात्मिक असंतोषों और अतृप्तियों को दूर करने की दिशा में विवेक-वेदना-स्थिति से ग्रस्त होकर काम किया है।

—गजानन माधव मुक्तिबोध

अहंकार है अंधकार

❑ ❑

❑ आचार्यश्री महाप्रज्ञ ❑

रे पक्षिन्नागतस्त्वं कुत इह सरसस्तद् कियद् भे विशालं,
किं मद् धाम्नोऽपि बाढ़ं न हि न हि महत् पाप! मा ब्रूहि मिथ्या।
इत्थं कूपोदरस्थः सपदि तटगतो दर्दुरो राजहंसं,
नीचः स्वल्पेन गर्वी भवति ह विषय नाऽपरे येन दृष्टाः।।

कुएं की मेंड़ पर एक राजहंस आकर बैठा। कुएं में एक मेढक रहता था और राजहंस को देखकर पूछा—'पक्षिन्! कहां से आए हो?'

'मैं मानसरोवर से आ रहा हूं।'

'कितना बड़ा है तुम्हारा मानसरोवर? क्या मेरे इस घर (कुएं) से भी बड़ा है!'

'हां, इससे बहुत बड़ा है।'

'झूठ बोल रहे हो। मेरे सामने झूठ बोलते शर्म नहीं आती! मेरे घर से बड़ा तुम्हारा घर हो नहीं सकता।'

'मेढक! तू सदा कुएं में ही रहा, इससे बाहर कभी आया नहीं, तू नहीं जानता कि यह संसार कितना बड़ा है! इस विराट संसार में कितने बड़े-बड़े जलाशय हैं, नदियां हैं, समुद्र हैं। तूने देखा ही क्या है!'

कुएं में बैठा-बैठा मेढक यदि ऐसी गर्वोक्ति करे तो कोई आश्चर्य नहीं होता। जो नीचे रहने वाला है, वह बहुत थोड़े में अहंकारी बन जाता है। विराट को उसने कभी देखा ही नहीं, उसमें अहंकार आ ही जाता है। जो विशाल को देखता है, विराट का अनुभव करता है, उसमें अहंकार नहीं आ पाता। एक संस्कृत कवि ने कहा है—

अधोऽधोपश्यतः कस्य, महिमा नो गरीयसी।
उपर्युपरि पश्यन्तः, सर्वमेव दरिद्रति।।

ऐसा कौन व्यक्ति है जो अपने से छोटों को देखकर अहंकार से न भर जाए! ऐसा कौन व्यक्ति है जो अपने से बड़ों को देखकर अहंकार-रहित न हो जाए! नीचे देखने का अर्थ है—अहंकार से शून्य हो जाना।

अहंकार या अंधकार—दोनों मिलते-जुलते शब्द हैं। अहंकार से अधिक दुनिया में कोई अंधकार नहीं। जिस व्यक्ति में अहंकार होता है, समझिए—वह सदा अंधकार में ही रहता है। उसके लिए कभी सूर्योदय होता ही नहीं। कभी दीपक जलता ही नहीं। अहंकारी आदमी की आंखें कभी नहीं खुलतीं। देखता कौन है! दीया कभी नहीं देखता। बिजली-बत्ती कभी नहीं देखती। देखती हैं—हमारी आंखें। जिस व्यक्ति की आंखें ही नहीं खुलतीं, उसके लिए सूर्योदय हो जाए, चाहे दीया जल जाए—वह देख नहीं पाता। पर दो आंखों से देखना भी क्या देखना होता है? व्यक्ति की तीसरी आंख नहीं खुल जाती—ज्ञान-चक्षु, विवेक-चक्षु, समता-चक्षु नहीं खुल जाते तब तक देखना भी क्या देखना हुआ? दो आंखों से कोई यह सब नहीं देख पाता।

अहंकार से अधिक दुनिया में कोई अंधकार नहीं। जिस व्यक्ति में अहंकार होता है, समझिए—वह सदा अंधकार में ही रहता है। उसके लिए कभी सूर्योदय होता ही नहीं। कभी दीपक जलता ही नहीं। अहंकारी आदमी की आंखें कभी नहीं खुलतीं। देखता कौन है! दीया कभी नहीं देखता। बिजली-बत्ती

नए ईसवी वर्ष पर विशेष

कभी नहीं देखती। देखती हैं—हमारी आंखें। जिस व्यक्ति की आंखें ही नहीं खुलतीं, उसके लिए सूर्योदय हो जाए, चाहे दीया जल जाए—वह देख नहीं पाता। पर दो आंखों से देखना भी क्या देखना होता है? व्यक्ति की तीसरी आंख नहीं खुल जाती—ज्ञान-चक्षु, विवेक-चक्षु, समता-चक्षु नहीं खुल जाते तब तक देखना भी क्या देखना हुआ?

दुनिया में दो तरह के अहंकार सबसे बड़े होते हैं। एक अहंकार है—'मैं' और दूसरा अहंकार है—'मेरा'। 'मैं'—यह सबसे बड़ा अहंकार है। आदमी जानते हुए भी इस सचाई को नहीं जानता। इस जगह ये दो आंखें भी बंद हो जाती हैं, कभी अहंकार सामने आ जाता है तो कभी ममकार सामने आ जाता है।

दुनिया में अनेक धर्म हैं। अनेक नाम हैं, पर नाम तो संप्रदाय का होता है, धर्म का कोई नाम होता ही नहीं है। धर्म होता है—अनाम। हम अनाम को भी नाम दे देते हैं। धर्म अशब्द होता है। हम उसे शब्द देते हैं। सब धर्म इस बात को स्वीकार करते हैं कि अहंकार और ममकार से बड़ा कोई अंधकार दुनिया में नहीं है। जरूरत यह है कि हम अंधकार से प्रकाश की ओर जाएं। भगवान महावीर ने कहा—

'अन्नाणं परियाणामि नाणं उवसंपज्जामि'—मैं अज्ञान को छोड़ता हूं और ज्ञान को स्वीकार करता हूं, यह मंगल भावना है। वैदिक साहित्य में भी 'तमसो मा ज्योतिर्गमय'—मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले चलो, उल्लेख आता है।

मनुष्य की भावना सदा यही रही है कि अंधकार से प्रकाश की ओर जाए। भावना तब तक पूरी नहीं होती, जब तक उसकी प्राप्ति का साधन ठीक नहीं हो, उसका उपाय ठीक न हो जाए। भावना होना एक बात है और उपाय होना अलग बात है। कुछ लोग भावना रखते हैं, पर सम्यक् उपाय हाथ में नहीं आता तो भावना सफल नहीं हो पाती।

एक बहुत मार्मिक कहानी है। सास ने बहू से कहा—'बहूरानी, आज मैं कहीं जा रही हूं। तुम नई-नई आई हो, अपने घर का यह नियम है कि रात को अंधेरा नहीं रहना चाहिए। तुम ध्यान रखना, घर में अंधेरा न आ जाए; अंधेरा न हो जाए।' बहू नई-नई और भोली थी। बहुत भोली। सास बाहर चली गई। संध्या हुई। अंधेरा होने लगा। बहू ने सारे दरवाजे और खिड़कियां बंद कर दीं। अंधेरा घना हो गया। वह हाथ में लाठी ले अंधेरे को पीटने लगी। हाथ लहूलुहान हो गए, पर अंधेरा बना रहा। सास आई और बहू से पूछ-ताछ की। उसने लहू से रिसते हाथ आगे कर दिए।

सास बोली—'क्या दरवाजे बंद करने से और लाठी पीटने से अंधेरा गया है!' बहू बोली—'तो कैसे जाता है?' सास ने हाथ में दियासलाई ली और दो-चार दीवटों पर दीए जलाए—एकदम प्रकाश हो गया। सास बोली—'पीटने से अंधकार नहीं जाता। अंधकार जाता है—दीया जलाने से।'

मुझे लगता है, हम लोग भी शायद लाठियां बजाने में बहुत कुशल हैं। केवल लाठियां बजा-बजाकर अंधेरे को मिटाना चाहते हैं। यथार्थ उपाय नहीं जानते, बिजली जलाना नहीं जानते, प्रकाश करना नहीं जानते। प्रकाश करने का उपाय होता है, जो व्यक्ति उपाय को नहीं जानता, उसके हाथ में कोरी पकड़ की बात सामने आती है। वह कोरा पकड़ लेता है और इतना तेज पकड़ता है कि उसे छोड़ना भी पसंद नहीं करता। किंतु जब तक कोई उपाय बताने वाला न मिले, उपाय समझ में न आए—तब तक अंधकार मिटता नहीं।

अहंकार को मिटाना, ममकार को मिटाना बहुत लोग चाहते हैं, पर कोई उपाय हाथ नहीं लगता, तब तक अहंकार भी बढ़ता जाता है और ममत्व भी बढ़ता जाता है। मैं धार्मिक लोगों से प्रश्न किया करता हूं कि आपको धर्म करते-करते बीस वर्ष, तीस वर्ष, पचास वर्ष, साठ वर्ष हो गए—बताएं कि आपके जीवन में क्या परिवर्तन आया? आपके स्वभाव में क्या परिवर्तन आया? आपका क्रोध कम हुआ या नहीं? आपका अहंकार, लोभ, क्रूरता—कम हुई या नहीं? उत्तर मिलता है—'ऐसा तो नहीं हुआ।' तो फिर क्या किया? धर्म का परिणाम क्या रहा? फल क्या मिला? जब हमारी दृष्टि नहीं बदलती, हमारी आदतें नहीं बदलतीं, हमारा स्वभाव नहीं बदलता, ज्यों-के-त्यों सारे अड़ंगे चलते हैं तो उपासना का प्रयोजन ही क्या रहा?

साधना का अर्थ है—स्वभाव का परिवर्तन। साधना का अर्थ होता है वृत्तियों का परिवर्तन। कोई आदमी क्रूर है और कोमल नहीं बनता, कोई आदमी नशा करने वाला है, मादक वस्तुओं का सेवन करने वाला है, वह सात्त्विक वस्तुओं का सेवन करने वाला नहीं हो सकता, कोई व्यक्ति अहंकार और क्रोध में चूर रहता है—वह विनम्र और शांत नहीं बन सकता, तो मान लेना चाहिए कि धर्म के नाम पर अधर्म का आचरण ही हो रहा है। ऐसी विडंबना है कि आदमी दिन-भर बुराइयां करता है और शाम के समय या प्रातःकाल प्रार्थना करता है, कुछ जप करता है, ध्यान करता है और दोहराता है—'प्रभु, मेरे अवगुण चित न धरो! समदर्शी है नाम तिहारो, चाहो तो पार करो।' बस! इतने में ही छुट्टी पा लेता है और फिर पूरी तैयारी के साथ बुराई करने में जुट जाता है। यह मान लेता है कि बुराई तो मैंने की, पर प्रभु की आराधना भी मैंने की है। पहले का सारा पाप साफ हो गया है, आज बुराई करूंगा तो उसे भी शाम को साफ कर दूंगा। तो बुराई करने में कोई कठिनाई नहीं। कैसी विडंबना! धर्म को आदमी ने बुराई को पालने का साधन बना रखा है।

कुछ लोग खाने के लोलुप होते हैं। वे सामान्य भोजन भी नहीं पचा पाते, पर पत्थर-हजम-चूर्ण आदि के द्वारा पचा लेने का प्रयत्न करते हैं और खूब खाते जाते हैं। मुझे प्रतीत होता है कि आज लोगों ने धर्म को भी बुराई (पत्थर)-हजम चूर्ण बना रखा है। चाहे जितना पाप करो—धर्म कर लेंगे, सारा साफ हो जाएगा। धर्म—जो एक उपाय है अहंकार को मिटाने का, ममकार को मिटाने का, बुराइयों को मिटाने का, समस्या के निदान के रूप में हम प्रयोग नहीं कर रहे हैं। यह बात जब तक समझ में नहीं आती, तब तक हमारा अंधकार मिटने वाला नहीं।

मैं सोचता हूं, हमें धर्म पर पुनर्विचार करना चाहिए। पुनर्विचार की जरूरत इसलिए है कि धर्म से आदमी को जितना लाभ मिलना चाहिए, वह लाभ कहां मिल रहा है? धर्म एक अनुशासन है। धर्म एक भय भी है, लज्जा है, एक संयम है। आदमी अभय होना चाहिए, किसी से डरना नहीं चाहिए। बात बिल्कुल ठीक है कि डरना नहीं चाहिए। ध्वंसात्मक भय जीवन का विघटन करता है।

जिन लोगों में गुरु के प्रति या समस्या के निदान के प्रति आस्था का भाव नहीं होता, वे लोग सफल नहीं हो पाते। आगे बढ़ने के लिए, प्रकाश की ओर जाने के लिए सहारा चाहिए। अगर वह सहारा नहीं मिलता है तो जीवन में प्रकाश नहीं मिलता। सबसे बड़ा प्रकाश है—हमारा अंतर्ज्ञान। अंतर्ज्ञान तब तक नहीं जागता जब तक अच्छा गुरु नहीं मिलता। अच्छा मार्गदर्शक, अच्छा उपाय और अच्छा सहारा नहीं मिलता।

आजकल पूरे संसार में एक बात चल रही है कि 'तीसरा नेत्र' खुलना चाहिए। जो शिव की उपासना करने वाले हैं, उन्होंने शिव की मूर्ति में देखा है कि ललाट में एक आंख होती है। वह तृतीय नेत्र कहलाता है। यह तीसरी आंख जब तक नहीं खुल जाती, तब तक अच्छा धार्मिक नहीं बना जा सकता और अंधकार से प्रकाश में जाने की बात समझ में ही नहीं आती। जब यह तीसरी आंख खुलती है तो सारी बातें बदल जाती हैं।

हम देखते हैं कि धन के प्रति जितना मोह है, शायद दुनिया में किसी के प्रति उतना मोह नहीं है। माता-पिता, पति-पत्नी—सबके प्रति मोह होता होगा, पर जब धन का मोह सामने आता है, तो अन्य सब मोह पीछे रह जाते हैं। हमें समझना चाहिए कि दुनिया में सबसे ज्यादा वैर बढ़ाने वाला कोई उपकरण है तो वह धन ही है।

साधु ने प्रसन्न होकर अपने भक्त को पारसमणि दी। भक्त ने पूछा—'पत्थर का क्या करूंगा?' साधु बोला—'यह पत्थर नहीं, पारसमणि है। इससे लोहा भी सोना बन जाता है।' वह लेकर चला, पर तत्काल लौटकर आया और बोला—'मुझे तो वह चाहिए जिसे पाकर आपने इसका त्याग कर दिया।' कितने मर्म की बात है!

दुनिया में ऐसा भी होता है कि पारसमणि को भी ठुकरा दिया जाए। चिंतामणि रत्न को भी ठुकरा दें—वही सबसे बड़ी शक्ति है। यह है धर्म की शक्ति, त्याग की शक्ति। वह तब मिलती है जब हमारा तीसरा नेत्र खुलता है, जब हमारी चेतना जाग जाती है। यह तीसरा नेत्र खुल जाना ही सबसे बड़ा प्रकाश है। अंधकार से प्रकाश की ओर जाना यही है।

प्रश्न होगा कि यह खुले कैसे? खोलने की चाबी आपके हाथ में है। सारी चाबियां आपके पास हैं। केवल जानना है कि चाबी कैसे घुमाई जाए?

जब मनुष्य में शक्ति का जागरण होता है तो सारी चाबियां घूम जाती हैं। तीन शक्तियां हैं—इच्छा-शक्ति, संकल्प-शक्ति और एकाग्रता की शक्ति।

इच्छा-शक्ति—हमारे मन में काम करने की बलवान इच्छा होनी चाहिए। जब तक काम करने की बलवती इच्छा नहीं होती, तब तक काम नहीं होता। जैसे ही मन में एक तीव्र इच्छा जागती है, आदमी काम करने को तैयार हो जाता है।

संकल्प-शक्ति—संकल्प की शक्ति बड़ी प्रबल होती है। जिन लोगों ने इसका अनुभव किया है, वे जानते हैं कि असंभव लगने वाली बात संकल्प के द्वारा संभव बनाई जा सकती है। संकल्प का प्रयोग बड़ा विचित्र होता है।

एक आदमी साधक के पास आया। साधक एक पत्थर पर बैठा था। आदमी ने पूछा—'इस मजबूत चट्टान पर किसका अधिकार है?' उत्तर दिया—'लोहे का अधिकार है। जब लोहे का हथौड़ा पड़ता है तो घनीभूत पत्थर भी चूर-चूर हो जाता है।' फिर आगे पूछा—लोहे पर किसका अधिकार है?—अग्नि का। आग लोहे को पिघला देती है। फिर आगे प्रश्न हुआ—अग्नि पर किसका अधिकार है?—पानी का। वह आग को बुझा देता है। पानी पर किसका अधिकार है?—हवा का। कितनी ही घनघोर घटा हो, हवा चलती है, बादल बिखर जाते हैं। फिर आगे प्रश्न हुआ—हवा पर किसका अधिकार है? साधक ने कहा—संकल्प-शक्ति का। मनुष्य की संकल्प-शक्ति ऐसी है जो हवा को भी वश में कर ले। आदमी श्वास को भी वश में कर लेता है।

संकल्प के द्वारा आदमी श्वास को भी रोक सकता है। संकल्प के द्वारा आदमी बड़े-बड़े काम कर सकता है। अतः हमारी दूसरी शक्ति है संकल्प की शक्ति। कल्पना करें, एक आदमी कमजोर है—मन से या शरीर से बीमार है। किंतु वह संकल्प करता है कि मैं स्वस्थ हो रहा हूं, मेरा मनोबल बढ़ रहा है। दस-बीस दिन प्रयोग कर देखें—अपने-आप को सुझाव दें, सोते-जागते सुझाव दें, बोल-बोलकर सुझाब दें—फिर धीमे-धीमे मानसिक सुझाव दें। दस-बीस दिन में आपको लगेगा कि आपकी शक्ति बढ़ रही है, आपकी कमजोरियां समाप्त हो रही हैं। बहुत बड़ी शक्ति है संकल्प की शक्ति।

एकाग्रता की शक्ति—यह हमारी तीसरी शक्ति है। हम मन को एकाग्र करना सीखें। एक विषय पर टिकाना सीखें। मौन करना सीखें। मौन के बिना मन को एकाग्र नहीं किया जा सकता। एक बार ऐसा हुआ कि चार आदमी गुरु के पास आए। आकर बोले—'गुरुदेव! हम साधना करना चाहते हैं। हमें मार्गदर्शन दें।' गुरु ने कहा—'जाओ, भीतर एक कमरा है, बैठ जाओ और साधना का प्रयोग शुरू कर दो। एक घंटा मौन रहना। फिर देखूंगा।' वे बैठ गए। थोड़ा अंधेरा हुआ और रहा नहीं गया। मन में तरंग उठी और एक बोल पड़ा—'अरे! अंधेरा हो गया। किसी ने दीया ही नहीं जलाया।' दूसरा बोला—'चुप! मौन है, बोल मत' तीसरा बोला—'अरे! तूने तो मौन तोड़ दिया।' चौथा बोला—'एक मैं ही बचा हूं, जिसने मौन नहीं तोड़ा है।'

एकाग्रता के बिना हमारे मन में इतनी तरंगें उठती हैं, इतने विकल्प उठते हैं कि बड़ी विचित्र स्थिति बन जाती है। एकाग्रता के बिना मौन संभव नहीं। एकाग्रता की शक्ति का अभ्यास करना सीखें। एक विषय पर मन को टिकाना सीखें। जब दस-बीस मिनट का अभ्यास हो जाए तो महसूस होगा कि यह कितनी बड़ी शक्ति है।

इच्छा-शक्ति का विकास, संकल्प-शक्ति का विकास और एकाग्रता की शक्ति का विकास—इन शक्तियों का विकास होता है तो ये तीनों शक्तियां हमारे तृतीय नेत्र खोलने लगती हैं। अंतर्दृष्टि को खोलने लगती हैं। तब अंधकार से प्रकाश की ओर हम जाने लगते हैं। यह नहीं होता है तब तक चाहे जितना भी जीवन बीत जाए, कितने ही वर्षों तक कुछ करते चले जाएं, अंधकार मिटता ही नहीं। अहंकर मिटता नहीं, ममकार मिटता नहीं।

हमारे जीवन का उद्देश्य होना चाहिए अंधकार से प्रकाश की ओर जाना। लोग पूछते हैं—हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है? हमारा लक्ष्य क्या है? पूछना उचित भी है। निरुद्देश्य जीवन तो मूर्ख जैसा होता है। समझदार आदमी जीवन का कोई लक्ष्य बनाता है। हमारे जीवन का उद्देश्य है—प्रकाश में जाना, प्रकाश की ओर बढ़ना।

प्रश्न होगा कि इसका उपाय क्या है? उद्देश्य तो स्पष्ट हो गया कि अंधकार से प्रकाश की ओर जाना है। जाने का साधन भी स्पष्ट है—उपरोक्त तीन शक्तियों का विकास। इन शक्तियों का विकास कर अंतर्ज्ञान के रास्ते को खोलना, यानी तीसरे नेत्र को खोलना। जैसे-जैसे इन शक्तियों का प्रयोग होगा, अपने-आप भीतर से उनके उत्तर मिलते चले जाएंगे। कहां से आएंगे वे उत्तर? कहां से आएंगे समाधान—अंतर्ज्ञान से।

तो हम तीसरे नेत्र को खोलने का अभ्यास करें। ❖

कृपया ध्यान दें

जैन भारती के लिए रचनाएं भेजते समय कृपया निम्नोक्त बिंदुओं का अवश्य ध्यान रखें—

- आपकी रचना कम से कम 1500-2000 शब्दों से लेकर 2500-3000 शब्दों के मध्य हो। कुछेक आलेख जैन भारती के एक पृष्ठ से भी कम आकार के होते हैं, जो हमारे लिए अपर्याप्त हैं। जैन भारती के लिए ऐसे आलेख काम में लेना संभव नहीं। अतः इतने छोटे आलेख न भेजें।
- रचनाएं 'फुल स्केप' कागज पर एक तरफ हाथ से लिखी या टाइप की हुई हों। पूरा हाशिया अवश्य छोड़ें। दो पंक्तियों के बीच भी पर्याप्त स्थान होना जरूरी है।
- फोटोकॉपी न भेजें अथवा सुस्पष्ट हो तो ही भेजें।

कृपया उपरोक्त हिदायतों की ओर पूरा ध्यान देकर हमें सहयोग करें।

सुख और दुख : सत्य या सपना

❑ ❑

❑ यशवन्तसिंह मेहता ❑

सुख को सभी लोग खोजते हैं। कष्ट और पीड़ा कोई नहीं चाहता। दुख से सभी बचना चाहते हैं। शरीर का स्वभाव है, प्राण की आकांक्षा है कि उसे सुख मिले, शांति मिले, आनंद मिले। इसीलिए हम जिन्हें दुख मानते हैं, पीड़ाएं मानते हैं, जिन्हें कष्ट मानते हैं—उन्हें दूर करने का उपाय करते हैं। दुख को दूर करने का उपाय लगभग सभी लोग करते हैं, यह बिना जाने कि दुख क्या है, दुख क्यों है व दुख किसे है? एक दुख को दूर करने का प्रयत्न करते हैं कि दूसरा दुख घेर लेता है। एक दुख दूर होगा, दूसरे दुख मौजूद होंगे, क्योंकि मूल कारण समाप्त नहीं होता है। सच तो यह है कि जीवन-भर दौड़ते हैं—धन के लिए, पद के लिए, प्रतिष्ठा के लिए; यह सोचकर कि इनसे शांति या संतृप्ति मिल जाए, जीवन में आनंद उपलब्ध हो जाए। पर सारी दौड़ के बाद गंतव्य तो दूर ही रहता है।

एक साधु से किसी व्यक्ति ने जाकर अपनी उलझन का हल पूछा। साधु ने कहा, 'मैं तुम्हारी एक यह उलझन हल कर दूं तो क्या दूसरी उलझन खड़ी नहीं होगी?' वह बोला, 'जीवन तो उलझन ही है, खड़ी तो जरूर होगी।' साधु ने कहा, 'तब तुम फिर आओगे। यह सिलसिला फिर जारी ही रहेगा। मैं आज हूं, कल मैं समाप्त हो जाऊंगा, तो तुम्हारी उलझन कौन समाप्त करेगा?' उस साधु ने कहा, 'तुम मुझसे वह रास्ता पूछो जिससे समाधान स्वतः मिल जाता है। भीतर एक विवेक व बोध उत्पन्न हो जाता है, अंतर्दृष्टि मिल जाती है। इस सत्य का चिंतन कि जो जीवन मिला है, वह क्या है? जैसा है, वह क्यों है? हम क्या खोज रहे है, क्यों खोज रहे हैं व कैसे दुख से छुटकारा मिल सकता है?'

दुख व सुख में कोई बुनियादी एकता है। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों भीतर से कहीं जुड़े हैं, क्योंकि कोई भी सुख, दुख में परिवर्तित हो सकता है और कोई भी दुख, सुख में परिवर्तित हो सकता है। जिस सुख से परिचय हो जाता है, वह धीरे-धीरे दुख हो जाता है। जिस सुख को हम पा लेते हैं, पहले क्षण तो वह सुख मालूम पड़ता है, पर थोड़े दिन बीतने पर वह सुख नहीं रह जाता। जो भोजन प्रीतिकर है, सीमा के बाहर करते ही अप्रीतिकर हो जाता है। जिसे दुख की तरह जानते हैं उसमें ही रहना पड़े तो थोड़े दिनों के बाद वह दुख नहीं रह जाता, परिचित हो जाता है। जिन चीजों से सुख लिया जा सकता है, उनसे दुख भी लिया जा सकता है और जिनसे दुख लेते हैं, उनसे ही सुख ले लेते हैं।

सभी की क्षणभंगुरता

महावीर ने जिन बारह भावनाओं के चिंतवन को जारी रखने की देशना दी है उनमें 'अनित्य' सबसे पहली है। इस बात का स्मरण कि यहां जो भी है वह क्षणभंगुर है, अनित्य है। क्षणभंगुरता दिखाई नहीं पड़ती, क्योंकि प्रक्रिया बहुत धीमी होती है। यहां सब बदलता है, कुछ भी स्थिर व स्थाई नहीं रहता। एक प्रसिद्ध सूफी कहानी है। एक सम्राट ने विद्वानों को बुलाया और कहा कि वे एकवचन का ऐसा सूत्र बताएं जो हर घड़ी काम आए, चाहे दुख हो कि सुख, जीत हो या हार, जीवन हो कि मृत्यु। सब विद्वानों ने बड़ी मेहनत की, दिमाग लगाया, पर ऐसे किसी सूत्र के निष्कर्ष पर नहीं पहुंचे। वे एक पहुंचे हुए सूफी फकीर को लाए। उस फकीर ने सम्राट को एक अंगूठी दी और कहा कि इसे पहन लो। अंगूठी में नगीने के नीचे एक छोटा कागज रखा है जिसमें यह सूत्र लिखा है। शर्त एक ही है कि जब सब तरफ से असहाय हो जाओ तभी इसे खोलकर पढ़ना। सूत्र बहुत महत्त्वपूर्ण है

और बिना निरुपाय परिस्थिति के खोला गया तो अर्थहीन हो जाएगा।

वर्षों बीत गए। कई बार सम्राट को याद भी आया, पर लगी शर्त भी पूरी करनी थी। जब पास के सम्राट ने उस पर हमला कर दिया और वह हार गया तो जान बचाने के लिए घोड़े पर जंगल की ओर भागा। प्राण संकट में थे। पहाड़ी घाटी में भागा जा रहा था, पर पाया कि आगे रास्ता समाप्त हो गया है। आगे भयंकर खड्डे हैं और पीछे दुश्मन आ रहा है। हतप्रभ खड़ा हो गया, क्या करे? अचानक अंगूठी की याद आई। नगीना हटाया, कागज निकाला, उस पर एक छोटा-सा वचन लिखा था—'यह भी बीत जाएगा'। पढ़ते ही प्रसन्नता लौट आई, घबराहट मिट गई। वह बैठ गया। संयोग की बात है कि पीछा करने वाले सैनिक भी दूसरे रास्ते पर मुड़ गए और घोड़ों की टापें सुनाई देना बंद हो गईं। उसने अंगूठी वापस पहन ली। कुछ दिनों बाद उसने मित्रों की सहायता से हमला कर राज्य को पुनः प्राप्त कर लिया। बड़ा आह्लादित था, जश्न मनाया जा रहा था। फिर उसने वही अंगूठी खोली, कागज पढ़ा तो विजय का उल्लास, वह दंभ सब विदा हो गया। वजीरों ने पूछा, 'अभी प्रसन्न थे, एकदम क्या हुआ?'

सम्राट ने कहा, 'यह भी बीत जाएगा'। न तो इस संसार में सुखी होने को कुछ है, न दुखी होने को कुछ है। यही है महावीर की अनित्य भावना। जो क्षणभंगुर है—वह सत्य नहीं है, जो क्षणभंगुर है—वह सपना है। सपना वह जो पहले नहीं था, अभी है और अभी नहीं हो जाएगा—क्या सुख, क्या दुख?

सुख, दुख—दोनों उत्तेजनाएं

महावीर ने कहा—'खणाभित्तसुक्खा, बहुकालदुक्खा, अणिगामसुक्खा।' ये काम, भोग क्षण-भर का सुख और चिरकाल तक दुख देने वाले हैं। बहुत दुख और थोड़ा सुख देने वाले हैं। ये कांटे में लगे आटे के समान हैं। मछलियों को लगता है कि सुख है, पर आखिर में कांटे में छिद जाती हैं। आटा धोखा सिद्ध होता है। हर सुख के आटे में दुख का कांटा है। जिसने सुख चाहा और दुख मिला तो उद्विग्न होना स्वाभाविक है। अपेक्षा के प्रतिकूल होने से उद्विग्नता निर्मित होती है। इसका यह भी अर्थ हुआ कि जो सुख मांग रहा है, वह भी उद्विग्नता मांग रहा है। सुख भी एक उद्विग्नता है, उत्तेजना है। कभी यदि बड़ा सुख मिल जाए तो दुख से भी बदतर हो जाए। आदमी को बड़ी लाटरी मिल जाए तो हृदय गति भी रुक सकती है। मात्रा से ज्यादा सुख बर्दाश्त नहीं होता। दुख को सहना आसान है, क्योंकि उसके बाद सुख की आशा रहती है, पर सुख आ जाए तो फिर कोई आशा नहीं है—अतः उत्तेजना गहरी हो जाती है, तार टूट जाते हैं।

सुखी व्यक्ति भी शांत नहीं होता, दुखी व्यक्ति भी शांत नहीं होता। सुख प्रीतिकर उत्तेजना है और दुख अप्रीतिकर उत्तेजना है। ये दोनों ही उत्तेजनाएं हैं।

सुख केवल भासता

श्रीकृष्ण गीता में कहते हैं—ये हि संस्पर्शजा भोगा दुखयोग य एवते। आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः।। और जो यह इंद्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषों को सुख रूप भासते हैं, तो भी निस्संदेह दुख के ही हेतु हैं और आदि-अंत वाले अनित्य हैं। इसलिए हे अर्जुन! बुद्धिमान विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता। श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो हमें सुख जैसा भासता है, वह सुख नहीं है। भासता तब तक है जब तक पक्का पता नहीं चलता, उसके पास नहीं जाते। दूसरी बात, सुख जब तक नहीं मिलता तब तक तो सुख मालूम पड़ता है, पर हाथ में आने से लगता है कि अचानक खो गया। फिर नए सुख की तलाश जारी हो जाती है। यदि पहले वाला सुख ही था तो उस पर ठहर ही जाना चाहिए था। पर वास्तविकता यह है कि जब हाथ में आ जाता है तब मालूम पड़ता है कि सुख नहीं है। इंद्रधनुष जैसा है। पास जाएं तो कुछ नहीं मिलेगा, सिवाय भाप के बादलों और उनमें गुजरती सूरज की किरणों के। कोई रंग नहीं, रूप और आकार भी नहीं, परंतु दूर से प्यारा लगता है। झोंपड़े वाला सोचता है, महल में रहने वाले को सुख मिल गया है। महल में रहने वाला और बड़े महलों के लिए दौड़ रहा है, क्योंकि वहां सुख मिलेगा। दिखाई वह चीज पड़ती है—जहां स्वयं नहीं हैं। मन हमेशा अभाव ढूंढ़ता है।

लिएबमेन ने एक फकीर की कहानी लिखी है कि एक फकीर परेशान है, बहुत दुखी है। जीवन बीत गया प्रार्थना करते-करते, अब तक स्वर्ग की खबर नहीं लगी। एक रात सोते समय बूढ़े फकीर ने परमात्मा से कहा—बहुत हो चुका, अब थक गया। अब तक तो तुमसे सुख मांगे, अब नहीं मांगता। अब तो इतना ही मांगता हूं कि कम-से-कम मेरे दुख किसी और को दे दो और किसी दूसरे के दुख मुझे दे दो। मुझ से दुखी आदमी इस पृथ्वी पर नहीं है। प्रार्थना करते-करते वह सो गया। उसने एक स्वप्न देखा कि आकाश में आवाज गूंजती है कि सब लोग अपने दुखों को गठरियों में बांधकर नगर के केंद्रीय हॉल में पहुंच जाएं।

फकीर ने समझा कि उसकी प्रार्थना सुन ली गई है। अपने दुख बांधे, उठाई गठरी और भागा। रास्ते में देखा कि सारा गांव इसी तरह भाग रहा है। लोगों की गठरियों की तरफ देखा तो थोड़ा घबराया क्योंकि कोई गठरी छोटी नहीं दिखाई पड़ रही थी। उसने सोचा—नए दुख होंगे, दुख की बदलाहट भी राहत देगी। फकीर भवन में पहुंच गया। फिर एक आवाज गूंजी कि सब अपनी गठरियों को खूंटियों पर टांग दें। सभी तेजी से दौड़े कि खूंटियां समाप्त न हो जाएं पर खूंटिया काफी थीं। सबके दुख टंग गए। जब गठरियां खूंटियों पर टंगी तो दुख गठरियों के बाहर झांकते हुए दिखाई पड़ने लगे। फिर आवाज गूंजी कि अब जिसे जो गठरी चुननी हो वह चुन ले। फकीर घबराया और जोर से भागा कि कोई उसकी गठरी न उठा ले और झंझट में पड़ जाए। अपनी गठरी उठाकर फकीर थोड़ा संतृप्त हुआ। उसे भवन में अपनी गठरी सबसे छोटी दिखाई दी, फिर जो दुख थे उनसे परिचय भी तो था। न मालूम किसके अपरिचित दुख गले पड़ जाएं और मुसीबत में फंस जाएं। उसने चारों तरफ देखा तो बड़ा हैरान हुआ कि सभी ने अपनी-अपनी गठरियां वापस उठा ली थीं।

लगता है दूसरे सुखी हैं व हम दुखी हैं। उनकी चीजें तो दिखती हैं, हृदय तो दिखते नहीं। मान लें कि सुख हैं भी, तो भी शुरू होते ही समाप्त हो जाते हैं। ऐसा सुख मिल भी जाए तो पीछे दुख के सिवाय कुछ भी नहीं छोड़ जाता इसीलिए श्रीकृष्ण कहते हैं कि बुद्धिमान और विवेकी पुरुष उसमें नहीं रमते।

दृष्टि का अंतर

दुख व सुख में कोई बुनियादी एकता है। एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों भीतर से कहीं जुड़े हैं, क्योंकि कोई भी सुख, दुख में परिवर्तित हो सकता है और कोई भी दुख, सुख में परिवर्तित हो सकता है। जिस सुख से परिचय हो जाता है, वह धीरे-धीरे दुख हो जाता है। जिस सुख को हम पा लेते हैं, पहले क्षण तो वह सुख मालूम पड़ता है, पर थोड़े दिन बीतने पर वह सुख नहीं रह जाता। जो भोजन प्रीतिकर है, सीमा के बाहर करते ही अप्रीतिकर हो जाता है। जिसे दुख की तरह जानते हैं उसमें ही रहना पड़े तो थोड़े दिनों के बाद वह दुख नहीं रह जाता, परिचित हो जाता है। जिन चीजों से सुख लिया जा सकता है, उनसे दुख भी लिया जा सकता है और जिनसे दुख लेते हैं, उनसे ही सुख ले लेते हैं। देखने की दृष्टि का अंतर है।

एक गांव में एक रात संध्या को एक आदमी आया। उसने अपना घोड़ा बांधा और सो गया। उस घोड़े की दूर-दूर तक ख्याति थी और बड़े-से-बड़ा आदमी चाहता था कि घोड़ा उसका हो जाए। रात वह सोया और सुबह वह उठा तो घोड़ा नदारद था। वह गांव में गया, मिठाई खरीदी व लोगों को बांटने लगा। लोगों ने पूछा कि यह मिठाई किस बात की? उसने कहा कि रात मेरा घोड़ा चोरी चला गया। लोगों ने कहा—पागल तो नहीं हो गए, यह तो बड़े दुख की बात है। वह सवार कहने लगा कि खुश इसलिए हूं कि मैं घोड़े पर सवार नहीं था, नहीं तो मुश्किल में पड़ जाता। सुख और दुख देखने के दृष्टिकोण हैं। सुख-दुख व्याख्या में हैं।

आचार्यश्री महाप्रज्ञजी कहते हैं कि अभाव होना एक बात है और उसका संवेदन होना बिल्कुल दूसरी बात है। समस्या होना एक बात है, पर दुख का संवेदन होना बिल्कुल दूसरी बात है। ऐसा आदमी, जो हिमालय पर एक झोंपड़ी में बैठा है, पास में कोरा कंबल है और ताप के लिए धूनी है, बड़ा सुख का अनुभव करता है। एक आदमी, जिसके पास बड़ा प्रासाद है और सारे सुख के साधन हैं, बाहर से सर्दी-गर्मी नहीं आ रही है, पर भीतर से इतनी सर्दी-गर्मी है कि उसका कहीं अंत ही नहीं आता। प्रश्न है—दुख कहां से आता है? दुख है चंचलता में। जिसने अपनी चंचलता को कम नहीं किया, उसके लिए दुख-ही-दुख है। उनका कहना है कि जब दुख होता है और चित्त असमाहित होता है, विक्षिप्त होता है, तब आदमी अनैतिक बन जाता है। वह दुख के दुष्चक्र में फंसता जाता है। समाहित चित्त ही दुख मिटाने का उपाय है।

सुख का राज

जो व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं को सीमित नहीं मानता, वह सदा दुखी रहता है और जो अपनी आवश्यकताओं की सीमा पहचान लेता है, उसके जीवन में सुख का अवतरण शुरू हो जाता है। सिकंदर से डायोजनीज ने एक बार कहा था कि तू अगर एक बार पूरी दुनिया पा लेगा तो कभी तूने सोचा है कि फिर क्या करेगा? कहते हैं, सिकंदर यह सुनकर उदास हो गया और उसने कहा—यह मेरे खयाल में ही नहीं आया। ठीक कहते हैं आप, दूसरी तो कोई दुनिया ही नहीं है। अगर मैं एक पा लूंगा तो फिर क्या करूंगा? अभी तो खयाल आया, उसमें ही उदास हो गया। जिस वस्तु को पाने की सोचते हैं, वह मिल जाती है तो वह बेकार हो जाती है। फिर वहीं खड़े किसी और चीज की ओर रुख हो जाता है। आकाश पृथ्वी से छूता हुआ दिखाई देता है। चलते जाएं तो दिखता है पास ही दस, बीस किलोमीटर दूर होगा। वहां पहुंचते ही फिर इतना ही दूर दिखाई देता है। कहीं पृथ्वी को नहीं छूता, केवल दिखाई देता है। व्यर्थ आशा

कहीं उपलब्धि नहीं बनती, वासना कहीं तृप्ति नहीं बनती, कामना कहीं पूर्ण नहीं होती—बढ़ती जाती है, सिर्फ पूर्ण होती मालूम पड़ती है और व्यक्ति दौड़ता चला जाता है। मनुष्य के जीवित रहने के लिए व शुभता के लिए जो भी आवश्यकताएं हैं—वे आवश्यकताएं पूरी हो जाएं तो आगे की दौड़ दुख का निमंत्रण है। वस्तुएं काम की हैं, जीवन के लिए जरूरी हैं, उनका उपयोग हो पर उनसे मोह न हो, तब अपरिग्रह फलित होता है। अपनी आवश्यकता की सीमा पहचान लेना एक तरह से चित्त को समाहित करना है।

दुख-मुक्ति के सूत्र

बुद्ध ने कहा, जीवन दुख है। जीवन दुख है, ऐसी समझ न हो तो चित्त विश्राम में नहीं जा सकता। प्रतीति जीवन-भर हो रही है, पर निर्णय नहीं लिया जाता, यही सबसे बड़ी समस्या है। यदि एक सुख, दुख हो जाता है तो कभी यह नहीं सोचते कि दूसरा सुख भी दुख में परिवर्तित होगा, कोई निष्कर्ष नहीं निकालते। बुद्ध को मुर्दा दिखा तो उन्होंने पूछा—यह क्या हुआ? सारथी ने कहा, यह आदमी मर गया है। तो बुद्ध ने तत्काल पूछा कि मैं भी क्या मर जाऊंगा? दूसरा होता तो सोचता कि बेचारा, बड़ा बुरा हुआ, इसके बच्चे अनाथ हो गए। पर बुद्ध ने यह नहीं कहा, पर दूसरा सवाल पूछा कि क्या मैं भी मर जाऊंगा? सारथी संकट में पड़ा। उसने कहा—क्षमा करें! कैसे अपने मुंह से कहूं कि आप भी मर जाएंगे, परंतु कोई भी अपवाद नहीं। बुद्ध ने कहा—वापस लौट चलो, मैं मर ही गया। सारथी ने कहा—मैंने यह नहीं कहा, अभी तो आप जिंदा हैं। बुद्ध ने कहा—इससे क्या फर्क पड़ता है, मौत आज हो या बाद में, जब यह निश्चित है तो उतने समय में यह खोज लूं कि मौत क्या है? जब जीवन अनिश्चित है और मौत निश्चित है तो उसी की खोज करना सार्थक है। जिसे हम दुख समझते हैं, बुद्ध उसकी खोज करके परम आनंद को उपलब्ध हो गए। यदि यह प्रतीति गहरी हो जाए कि जीवन दुख है, तब ही मुक्ति की यात्रा आरंभ हो सकती है।

दूसरा आर्य सत्य बुद्ध कहते हैं कि दुख से मुक्ति का उपाय है। प्रतीति व निष्कर्ष के बिना उपाय नहीं हो सकता। योग उपाय है, पर प्रतीति के बिना उसका सहारा कौन लेगा? योग से सुख नहीं मिलेगा, परंतु दुख से मुक्ति मिल सकती है। तीसरा आर्य सत्य बुद्ध कहते हैं कि दुख के मुक्ति के बाद की अवस्था है। यह अपने अनुभव से कहते हैं। योग का प्रमाण तो अंतर्साक्ष्य ही हो सकता है। बुद्ध कह सकते हैं, जीसस कह सकते हैं—देखो मुझे। हमें यह अनुभव तो है कि जीवन अशांति से भरा हुआ है, पर दूसरा अनुभव नहीं है कि जीवन शांति का झरना भी हो सकता है। बुद्ध कहते हैं कि प्रत्येक का स्वभाव आनंद है, क्योंकि यदि ऐसा नहीं होता तो दुख का पता नहीं चल सकता था। दुख का बोध तभी होता है जब विपरीत हो रहा हो। इसलिए चौथी बात बुद्ध कहते हैं कि आनंद व शांति या दुखातीत अवस्था सभी को घट सकती है। फासले बाहर हैं, भीतर अंतस में कोई अंतर नहीं है, परंतु कोई भीतर जाए तो ही पता लगे।

सुख व विश्राम भीतर

धर्म कहता है कि व्यक्ति जो भी चाहता है, वह उसके भीतर ही है। भीतर नहीं होता तो चाह भी नहीं होती। चाह सुख की, शांति की, दिव्यता की है तो भीतर संभावनाएं छिपी हैं—बीज के रूप में, जो प्रकट होना चाहती हैं। इसलिए सुख व विश्राम की खोज यदि बाहर की गई तो वह कभी नहीं मिलेगा। यदि सोचें कि बाहर महल में मिलेगा, धन में मिलेगा, तो महल तो बन जाएगा, धन भी एकत्र हो जाएगा, पर भीतर तनाव भी इकट्ठे हो जाएंगे। कठोपनिषद में कहा गया है—पराचः कामाननुयन्ति बालस्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम। अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेप्विह न प्रार्थयन्ते॥ अर्थात् बाह्य बुद्धि वाले लोग, अप्रौढ़ केवल बाहर की वस्तुओं का अनुसरण करने में जीवन गंवा देते हैं। बुद्धिमान, विवेकशील वह है जो इस सत्य को जानकर कि बाहर कभी किसी को न कोई आनंद मिला है और न मिल सकता है। अपने ही अनुभव से, अपने ही जीवन के प्रयोगों से इस रहस्य को समझकर जो बाहर के अनित्य भोगों की आकांक्षा छोड़ देता है वही बुद्धिमान व विवेकशील है।

यदि कोई पूछे कि दुख कहां से आते हैं, तो बता देंगे कि बाहर से आए। उसने गाली दी, उसने अपमान किया, उसने हानि पहुंचाई, फायदा होना तय था, नहीं हुआ। पर कभी शांत या आनंदमग्न हो तो वह शांति कहां से आई, शायद ही बता सकें। यह कहीं बाहर से नहीं, भीतर से ही आई होगी। यदि बाहर को भूल जाएं और भीतर उतरने की विधियां—जैसे प्रेक्षाध्यान, कायोत्सर्ग, विपश्यना, अन्य यौगिक क्रियाओं आदि का सहारा लें तो पहाड़ जैसे दुख भीतर की सुख की किरण के सामने विसर्जित हो सकते हैं। विधियों के सहारे भीतर उतरने के सिवाय कोई उपाय नहीं है।

पर समय कहां?

पर भीतर जाने का, सोचने का कि दुख क्या है, सुख क्या है, मैं कौन हूं—इसकी फुरसत कहां है? चौबीस घंटों में से यदि एक-आध घंटा भी दिया जा सके तो बहुत है, पर

यह प्राथमिकता में कहां आता है? जीवन के अंत में भले ही पाएं कि ये ही घंटे काम के होते, बाकी तो बेकार गए। लोग कहते हैं कि समय नहीं कटता, ताश खेलते हैं, टीवी व सिनेमा देखते हैं या फिर और बेजरूरी काम करने लगते हैं, पर प्रभु-स्मरण की, अपने जीवन को समझने की, भीतर प्रवेश की बात करें तो तत्काल कहते हैं—समय कहां है? यह मन आत्मवंचक है। इसे समझने की जरूरत है और मन से चौबीस घंटों का हिसाब पूछने की जरूरत है। अब ज्यादा जरूरत है, क्योंकि चिकित्सा विज्ञान तो उम्र बढ़ाने में लगा है। हम यंत्रों व कंप्यूटर की सहायता से काम के घंटे कम करने में लगे हैं। काम तो कम हो गया पर समय काटने की समस्या हो गई। खाली आदमी क्या करे? उपद्रव ही करेगा। अतः आज जीवन को समझने, शांतिपूर्ण जीवन जीने और समय के सदुपयोग की पहले से अधिक आवश्यकता है। समय सबके पास बराबर है, कोई कमी नहीं है, जरूरत है प्राथमिकता और सही सोच की, सार्थक सोच की।

प्यास चाहिए

महावीर व बुद्ध किसी कष्ट में नहीं थे, दुख में नहीं थे। राजकुमार थे। किसी बात की कमी नहीं थी, शारीरिक कष्ट भी नहीं था, पर एक और ही प्रकार के भीतर के दुख से पीड़ित थे, गहरा भीतरी असंतोष था—इसी कारण सत्य की खोज में लग सके। जीवन का सत्य जानने के लिए एक प्यास चाहिए, भीतरी असंतोष चाहिए। हम सभी असंतुष्ट हैं, पर हमारे असंतोष का दायरा बाहर है, धन व वस्तुएं न होने से है, पद से है, प्रतिष्ठा से है, पर जैसा जीवन जी रहे हैं—उससे असंतोष नहीं है। जब तक असंतोष की दिशा नहीं बदले, भीतर की ओर न हो जाए तब तक सार्थक जीवन की शुरुआत नहीं हो सकती।

कठोपनिषद में कहा गया है—श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः श्रणवन्तोऽपि बहवो यं न विद्यु। आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः।। यम नचिकेता को कह रहा है कि आत्म-तत्त्व बहुतों को तो सुनने को नहीं मिलता। सुनाई भी पड़े तो सुनाई नहीं पड़ता। उनके कान पर भी चोट पड़ जाए तो व्यर्थ हो जाता है, जिनको बहुत-से लोग सुनकर भी नहीं समझ सकते। सुन भी लेते हैं तो सुन लेना और समझ लेना अलग बात है। आत्म-तत्त्व परम दुर्लभ है। महावीर भी कहते हैं—'जाणिज्जई चिन्तिज्जई जन्मजरामरणस्संभव, दुक्खं न य विसएसु विरज्जई'—जीव दुख को जानता है, विचार भी करता है, फिर भी विषयों से विरक्त नहीं हो पाता, क्योंकि वासना प्रबल है। कृष्ण, महावीर, बुद्ध के वचनों पर ध्यान दें, विचार करें और गहरे में उतरें तो सुख और दुख के पार की राह दृष्टि में आ सकती है। जरूरत है प्यास व अप्प दीपो भव की। ❖

बुराई की जड़ यह नहीं कि लोग ईश्वरीय आज्ञा को नहीं जानते। बल्कि बुराई की असली जड़ तो वे लोग हैं, जो ईश्वरीय आज्ञा के पालन को अपने लिए हानिकर समझते हैं। ये कौन हैं—धर्माधिकारी और शासक-वर्ग के थोड़े लोग, विद्वान, वैज्ञानिक और धनिक लोग जो इस ईश्वरीय आज्ञा का विरोध नहीं कर सकते, उसे झूठ भी साबित नहीं कर सकते, उसको नष्ट भी नहीं कर सकते, पर जो मनुष्य-समाज को भुलावे में डालने के लिए दूसरी सैकड़ों शिक्षाओं का भी आविष्कार करते हैं और इन अपनी बताई शिक्षाओं को भी ईश्वरीय आज्ञा के समान महत्त्वपूर्ण बताते हैं। इसलिए अपनी इन तमाम मुसीबतों से छुटकारा पाने के लिए मनुष्य उन तमाम धार्मिक, नैतिक और वैज्ञानिक अंध-विश्वासों को छोड़ दे जो जीवन के आवश्यक और अनिवार्य नियमों के रूप में उनके सामने पेश किए गए हैं, और स्वीकार कर लें उस अटल सत्य और ईश्वरीय कानून को जो केवल थोड़े-से मनुष्यों को नहीं, वरन् समस्त संसारभर के मनुष्यों को अधिक-से-अधिक सुख, समृद्धि एवं शांति दिला सकता है।

—लियो टॉलस्टॉय

मंत्र और ध्वनि तरंग से रोगोपचार

❑ ❑

❑ मुनि धर्मचन्द 'पीयूष' ❑

संस्कृत सूक्त—'मणि - मंत्र औषधीनामचिंत्यः प्रभावः' सूचित करता है कि मणि, मंत्र और ओषधि—जड़ी-बूटियों का अचिंत्य प्रभाव होता है। सर्वविदित है कि यथाविधि मणि-रत्नों का धारण करना रोग, ग्रह-दोष आदि दूर कर देता है। मंत्र-जप का अचिंत्य प्रभाव भी जगजाहिर है। मंत्रों की महिमा का बखान करते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने बताया है कि मंत्राक्षर की अतुलनीय शक्ति विश्व की बड़ी-से-बड़ी ताकत को झुका देती है, देवों को भी अधीन बना देती है। णमोकार महामंत्र, भव-परंपरावर्धक कषाय रोग को शांत कर वीतरागता प्रदान करता है। मंत्र का अर्थ मनन करने पर त्राण देने वाला माना जाता है। पिंगलायन में मंत्र की व्याख्या है—'मननं विश्व विज्ञानं, त्राणं संसार बंधनात्। यतः करोति संसिद्धि, मंत्र इत्युच्यते बुधैः'—मंत्र वह, जो संसार-बंधनों को क्षीण कर संसिद्धि प्रदान करता है। निरुक्तकार यास्क ने कहा—'मंत्र वह वर्ण-समूह है, जिसका बार-बार मनन किया जाए, आवृत्तियां की जाएं और जिससे इच्छित कार्य की सिद्धि हो।'

मंत्र-जाप जप भी है, ध्यान भी है। कोरा मंत्र-जप चले और ध्यान न हो तो इष्ट परिणाम मिल नहीं सकता। अनाज से पेट भरता है पर अपक्व अनाज का भक्षण कई समस्याएं व रुग्णता पैदा कर सकता है। इसी प्रकार मंत्र के साथ ध्येय के स्वरूप का स्पष्ट ज्ञान, तदनुरूप बनने की भावना, शुद्ध उच्चारण व लयबद्ध जप के योग से ही मंत्र यथेष्ट परिणाम देता है।

शब्द नाद-ब्रह्म है। वह अशब्द-अरूपात्मा तक पहुंचने का सशक्त सेतु है। शब्द एक शक्ति है। शब्द शक्ति का उच्चस्तरीय सृजन है—मंत्र। तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य श्रीमज्जाचार्य मंत्रशास्त्र के मर्मज्ञ और महासाधक थे। उन्होंने अनेक मंत्रों की रचना की। उनकी चौबीसी में अनेक मंत्र उपलब्ध हैं। मंत्रात्मक शब्दों के लयबद्ध शुद्धोच्चारण से वातावरण में विशिष्ट ध्वनि प्रकंपन उत्पन्न होते हैं, जो शरीर की कोशिकाओं पर प्रभाव डालते हैं। ध्वनि-तरंगों के माध्यम से संवाद-संप्रेषण तथा चिकित्सा की जा सकती है। श्रमसाध्य कार्यों के संपादन में उत्साह-मनोबलवर्धक शब्दों का प्रयोग किया ही जाता है। वैज्ञानिक निष्कर्षानुसार शब्दशक्ति से इलेक्ट्रोमैग्नैटिक लहरें उत्पन्न होती हैं, जो स्नायु-तंत्र की सक्रियता के साथ विकृत चिंतन-मनोविकारों को रोकती हैं।

अच्छा जीवन जीने के लिए णमोकार महामंत्र जैसे सिद्ध मंत्र का जप शक्तिशाली आलंबन बन सकता है। प्रतिकूल परिस्थितियों से अप्रभावी रहने के लिए शक्तिशाली कवच चाहिए, पवित्र आभामंडल चाहिए जो जप द्वारा पाया जा सकता है। हमारी सारी सक्रियता, दीप्ति, प्रभाव और आकर्षण प्राणशक्ति पर आधारित हैं और मंत्र से प्राणशक्ति का विकास होता है। अधोगामी ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी बनाए बिना ब्रह्मचर्य फलित नहीं होता। णमोकार मंत्र ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी बनाता है, अतः उससे सहज ही वासना क्षीण होकर ब्रह्मचर्य सिद्ध होता है। मंत्र-प्रयोग से प्राण सुषुम्ना में केंद्रित होता है, मानव की वृत्ति में अंतर्मुखता और निर्विकारता की स्थिति पैदा होती है, पदार्थ की पकड़ छूटती है और आत्मा की सन्निधि प्राप्त होती है।

णमोकार मंत्र का एक-एक अक्षर शक्ति-संपन्न है। प्रथम शब्द 'णमो' नम्रता सिखाता है—नम्र बन जाओ। लघुता से प्रभुता मिलती है। ताड़ छाया नहीं देता, आम-नीम छाया देते हैं, विनयी सफल होता है। व्यक्ति अहं के भार को जीवनभर ढोता है। जितना अहंकार, उतना भार, उतनी ही घृणा, वैमनस्य, क्रोधादिक का जमाव और उतना ही भवभ्रमण। 'णमो' अहं के पहाड़ को

पिघलाकर अहं से 'अर्हम' बनाने की ताकत रखता है। अहंकारादि कषायों का शमनकर्ता णमोकार मंत्रशास्त्र की दृष्टि से सर्वपाप-विष का विनाशक है। कर्मशास्त्र की दृष्टि से णमोकार के एक-एक अक्षर के उच्चारण से अनंत-अनंत कर्म-स्पर्धकों का नाश होता है। योगशास्त्र की दृष्टि से पदस्थ ध्यान है। ऐहिक दृष्टि से प्रशस्त अर्थ, काम व आरोग्य की प्राप्ति होती है। पारलौकिक दृष्टि से जब तक मुक्ति न मिले, तब तक उत्तम देवलोक, मृत्युलोक में उत्तम धार्मिक संस्कार-संपन्न कुल, बिना श्रम सहज ही में धर्म प्राप्ति, फलस्वरूप बोधि, समाधि व सिद्धि प्राप्त होती है। इसीलिए कहा गया है कि—चक्रित्व, सुरत्व, सुरूपता और सौभाग्य मिलना सुलभ है, पर णमोकार की प्राप्ति दुर्लभ है—'अविलब्भई चक्कित्तं, सुराहिक्तं, सुरूव सोहागं, नपुण परमेट्ठिमंतो, एसो निस्सेस कुसल करो'।

'सत्तरि कोडा-कोडी सायर माणे इमम्मि मोहणीए। कोडा-कोडी सेसे, नवकारो मुहज्जिओहोई'—मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोटा-कोटी सागरोपम में से एक कोटा-कोटी सागरोपम शेष रहती है, तब कहीं जीव णमोकार मंत्र को प्राप्त करता है। यह णमोकार 'सव्व पावप्पणासणो'—सर्व पापनाशक है।

पंचपरमेष्ठी का समाहार है—ॐ। कहा गया है—'ॐ अरिहंता, अशरीरा, आयरिय, उवज्झाय, मुणिणो। पंचक्खर निप्पन्नो, ओंकारो पंच परमिट्ठी'। इसी तथ्य को श्रीमज्जयाचार्यजी ने 'चौबीसी' के प्रथम दोहे में अभिव्यक्त किया है—'ॐ नमः अरिहंत, अतनु, आचारज उवज्झाय। मुनि पंच परमष्ठि ए, ओंकार रे मांय'। अपरिमित शक्तियों के पुंज 'ॐ' को भारतीय मनीषियों ने शब्द-ब्रह्म कहा है। यह पद ब्रह्म का वाचक है। ब्रह्मांड में ब्रह्म, पिंड (देह) में ॐ व्याप्त है। ओम् को गीता में भी एकाक्षर ब्रह्म कहा गया है। ओम् प्राण, बुद्धि व विवेक का प्रेरक है। त्रिशक्ति—अ. उ. म. सृजन, संरक्षण व संहारात्मक त्रिशक्ति का संयुक्त रूप है—'ॐ'। सिद्ध-योगियों द्वारा प्रदत्त बीजमंत्र 'ॐ' व्यक्तित्व-बदलाव, पर्यावरण-परिशुद्धि का अमोघ साधन है। शब्दोच्चार जिह्वा, तालु, कंठ का स्पर्श किए बिना अंतस से उभरता है। 'अकारो वै सर्वावाक्'—विश्व की समस्त वर्णमालाओं का प्रथम अक्षर 'अ' है। अकार ही समस्त वाक् और वाङ्मय का मूल है। ओंकार का आद्याक्षर भी अकार है। उ और म् के सम्मिलित उच्चारण के बाद जो चतुर्थ मात्रा के रूप में अनुगुंजित होता रहता है, वह भी अकार ही है। मांडूक्योपनिषद् में ओंकार की चतुर्थ मात्रा को ऋषियों ने 'अव्यपदेश्य' अर्थात अनिर्वचनीय कहा है, क्योंकि उसकी मात्रा के रूप में उससे बाहर निकलकर आने वाले 'उ' और 'म' अब उसी में लीन हो गए हैं—यानी मात्रा प्रपंच का पूरी तरह उपशम हो जाने के बाद अब वहां केवल 'अ' की ही अनुगूंज शेष रह गई है, इसलिए कहा गया है—'अकारो वै सर्वावाक्'। शब्द की तीन शक्तियां मानी गई हैं—अभिधा, लक्षणा और व्यंजना। इनमें से अभिधा आधारभूत शक्ति होती है, शेष दोनों शक्तियां उसी पर आश्रित होकर शब्द के अर्थ तक ले जाती है। ओम् की अभिधा 'अ' है, उसी से 'उ' और 'म्' का स्वर व व्यंजनों का समस्त वर्णमाला का विस्तार होता है। 'उ' ध्वनि जिह्वा के मूल से लेकर मुख की मध्यवर्ती ध्वनि के आधार पर अंतिम सीमा तक जाती है। 'म' ध्वनि शृंखला की अंतिम कड़ी है, ओष्ठ बंद करना पड़ता है। 'ओ' के उच्चारण से होठ खुलते हैं, जिससे दूषित वायु निकलती है। दूषित तत्त्व पुनः प्रवेश न करे, अतः 'म' से बंद हो जाते हैं। इसी से कायिक, वाचिक, मानसिक तथा आत्मिक शांति मिलती है। ध्वनि के अद्भुत रहस्य-भरे 'ॐ' के दीर्घ उच्चारण से शरीर की धमनियां विशेष सक्रिय हो जाने से रक्तसंचार सुचारु होने लगता है, प्राण प्रकंपित होते हैं। ओज (शक्ति) की वृद्धि होती है। मूलबंध व उड्डियानबंध सहज सधने से ऊर्ध्वरिता बनने व उदर रोग शमन में सहयोग मिलता है। मूलाधार चक्र (शक्ति केंद्र) तथा मणिपूर चक्र (तेजस केंद्र) प्रभावित होने से हताशा-निराशा दूर होती है, रोग प्रतिरोधक शक्ति पैदा होती है। मस्तिष्कीय शक्तियों का विकास 'म' के दीर्घोच्चारण में भ्रामरी प्राणायाम से हो जाता है। जिससे उत्पन्न विशेष तरंगों से मस्तिष्क में जमे विकार दूर होते हैं। स्मरण-शक्ति बढ़ती है। सहस्रार चक्र (शांति केंद्र) प्रभावित होता है। कुशल निर्देशन में विधिवत लंबे समय तक किया गया नैरंतरिक 'ॐ' का जप शक्ति (कुंडलिनी)-जागरण व अमंगल-निवारण का हेतु बनता है। बहुत ठीक कहा गया है—'ओंकार बिंदु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्तियोगिनः। कामदं, मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः।।'

अतुल अर्हताओं व संपूर्ण ज्ञान के शिखर अरहंत के बीजमंत्र अर्हम् में 'अ' अमृतभृत, अक्षयकोष का 'र', तेजस् का 'ह'—प्राण(जीवन)-शक्ति का स्रोत तथा बिंदु अनुपम शक्ति प्रदाता है। दूसरी दृष्टि से देखें तो संपूर्ण ज्ञान को प्रस्तुति देने वाली वर्णमाला समाहित है। वर्णमाला का 'अ'—आद्याक्षर है, 'ह'—अंत्याक्षर है, 'र'—अग्निबीज संपूर्ण अज्ञान, विकार, वासना, कषायादि वैभाविक प्रवृत्तियों

को जलाकर आत्म-स्वर्ण को परमशुद्ध, कुन्दन बन देता है। शून्य परम (आत्मा) का वाचक है। आनन्दकेंद्र (हृदय भाग) पर सुनहरी किरण बिखेरते 'अर्हम्' का ध्यान या प्राणकेंद्र (नाशाग्र) पर श्वेतरंग में 'ॐ' और ज्योतिकेंद्र (ललाट) पर चमकते हुए श्वेत रंग में 'अर्हम्' का ध्यान कर इंद्रियातीत आनंद का अनुभव किया जा सकता है। इसी तरह ज्ञानकेंद्र (चोटी के भाग) पर श्वेत रंग में 'अर्हत्' का जाप या तादात्म्य ध्यान, दर्शन केंद्र पर (दोनों भौंओं के बीच) बालसूर्य-सम अरुण रंग में 'सिद्धाणं' का जप या परम ज्योति का ध्यान, विशुद्धि केंद्र (कंठकूप) पर दीपशिखा-सम पीतवर्ण में 'आयरियाणं' का, आनंदकेंद्र (हृदय के पास गड्ढे का स्थान) पर हरे रंग में 'उवज्झायाणं' का तथा नाभि, पेडू या मूलाधार चक्र (शक्तिकेंद्र) पर मोर की गर्दन की भांति चमकते नीले रंग में 'लोए सव्व साहूणं' का जप या ध्यान आंतरिक शक्ति व परम पावनतावर्धक माने जाते हैं।

पवित्र मंत्रों का जप कामनापूर्ति के लिए नहीं, निर्विष-निर्विकार होने के लिए करना चाहिए। यह अलग बात है कि धान के साथ पुवाल की तरह, पवित्रता के साथ सकल सिद्धियां भी पांव पखारने लगती हैं और लक्ष्मी, मान-सम्मान या पद-प्रतिष्ठा स्वयं परिक्रमा करने लगती हैं।

शब्द नाद-ब्रह्म है। वह अशब्द-अरूपात्मा तक पहुंचने का सशक्त सेतु है। शब्द एक शक्ति है। शब्द-शक्ति का उच्चस्तरीय सृजन है—मंत्र। तेरापंथ के चतुर्थ आचार्य श्रीमज्जाचार्य मंत्रशास्त्र के मर्मज्ञ और महासाधक थे। उन्होंने अनेक मंत्रों की रचना की। उनकी चौबीसी में अनेक मंत्र उपलब्ध हैं। मंत्रात्मक शब्दों के लयबद्ध शुद्धोच्चारण से वातावरण में विशिष्ट ध्वनि प्रकंपन उत्पन्न होते हैं, जो शरीर की कोशिकाओं पर प्रभाव डालते हैं। ध्वनि-तरंगों के माध्यम से संवाद-संप्रेषण तथा चिकित्सा की जा सकती है। श्रमसाध्य कार्यों के संपादन में उत्साह-मनोबलवर्धक शब्दों का प्रयोग किया ही जाता है। वैज्ञानिक निष्कर्षानुसार शब्दशक्ति से इलेक्ट्रोमैग्नैटिक लहरें उत्पन्न होती हैं, जो स्नायु-तंत्र की सक्रियता के साथ विकृत चिंतन-मनोविकारों को रोकती हैं।

शब्द के प्रभाव पर बहुत पहले भी विचार हुआ और आज भी हो रहा है। शब्द व मंत्रशक्ति का अचिंत्य प्रभाव होता है। कुछ विशिष्ट मंत्रों की ध्वनियां शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक रोगों को दूर करती हैं, पर्यावरण व भावों को परिशुद्ध करती हैं।

ध्वनि का ही सधा-सधाया रूप है—संगीत, जो ध्वनि प्रदूषण का प्रभाव क्षीण कर प्राणवान सृजन करता है। एकाग्रता लाने, अवसाद दूर करने तथा स्नायु-तंत्र के कई विकारों में संगीत अतीव लाभप्रद उपचार है। क्रोधाभिभूत मानव पर संगीतोपचार का सुपरिणाम अनुभव किया जा सकता है। संगीत के प्रभाव से पेड़-पौधे अधिक शीघ्र फल-फूल सकते हैं, गाय के अधिक दूध देने के प्रयोग भी हो चुके हैं। निश्चित ही संगीत रोग-प्रतिरोधक शक्ति को शत-सहस्रगुणित बढ़ा देता है। भक्तिप्रधान संगीत का प्रचलन इसीलिए समादृत है। ❖

पेड़-पौधे, पशु-पक्षी; कोई भी अपनी देह की सीमा के बाहर नहीं जाता। असीम में उठे हुए वृक्ष देह की सीमा में रहते हुए अपने-आपको ऊंचा उठाते हैं। वे कहीं नहीं जाते; सिर्फ अपनी सीमा में शाखाएं फैलाते हैं। फूल बनते हैं, फल बनते हैं और अपने ही आस-पास खुद अपने बीज को झरा देते हैं। पशुओं को शिकार के लिए कोई प्रविधि नहीं चाहिए। पैने दांत, नुकीले नाखून और निर्भयता उनके हिस्से के शिकार के लिए काफी है। अपने हिस्से के कुछ दाने उठाने के लिए चिड़िया को चोंच मिल ही जाती है। घोंसला बनाने के लिए कुछ तिनके भी। पक्षी अपनी सीमा पहचान कर अनंत में उड़ते हैं और फिर अपने घोंसले में लौट आते हैं। मनुष्य अगर अपनी देह के साथ ऐसे ही रहने लगे तब सुख की चाह का क्या अर्थ रह जाएगा और दुख किसे कहेंगे?

—ध्रुव शुक्ल

कहानी

सिफारिशी चिट्ठी

❑ ❑

❑ भीष्म साहनी ❑

पुनर्वास मंत्रालय का क्लर्क त्रिलोकीनाथ खाने की छुट्टी के समय, कुछेक अन्य क्लर्कों के साथ दफ्तर के सामने खड़ा चाट खा रहा था, तब एक छोटी-सी घटना घटी जो एक क्लर्क की जिंदगी में सालों में एकाध बार ही घटती है। उसे किसी बड़े आदमी ने पहचान लिया। पहचाना ही नहीं, बगलगीर भी हुआ। बगलगीर ही नहीं, पूरे पांच मिनट तक त्रिलोकी बाबू के कंधे पर हाथ रखे बतियाता भी रहा, मुस्कराता भी रहा और जब मोटर में बैठकर जाने लगा तो अपनी नोटबुक निकालकर त्रिलोकी बाबू का नाम-पता भी लिखकर ले गया।

लोग कहते हैं—आदमी बदलता है, दुनिया नहीं बदलती। पर यह गलत है। खड़े-खड़े त्रिलोकी बाबू की आंखों के सामने दुनिया बदल गई। धूप खिल उठी, आकाश खिल उठा, सड़क पर आते-जाते लोगों की चहल-पहल में मेले का-सा समां बंध गया। लोग कहते हैं—इंसान हवा में उड़ नहीं सकता, पर बाबू त्रिलोकीनाथ को पंख लग गए। जब लौटकर दफ्तर की ओर आया तो सचमुच मन हवा में तैर रहा था। ईर्ष्या-भरी आंखों की दसियों जोड़ियां उसके बड़प्पन को निहार रही थीं, और तो और खिड़की में खड़े सुपरिंटेंडेंट ने भी देख लिया था कि त्रिलोकी बाबू कोई छोटा-मोटा आदमी नहीं है, बड़े-बड़ों से हाथ मिलाने की हैसियत रखता है।

'मैं नहीं जाऊंगी, पहले बताओ बात क्या है? तुम क्यों उल्टी-सीधी सोचा करते हो? खन्ना साहब ने चिट्ठी लिख दी तो कौन-सा गुनाह कर दिया! तुम्हारे भले के लिए ही लिखी है। खुद कह रहे थे कि सिफारिश के बिना काम नहीं चलता। अब किसी ने पीठ पर हाथ रखा तो उल्टा बिगड़ने लगे हो। अगर सुपरिंटेंडेंट ने देख लिया, तो तुम्हारी बला से। अगर क्लर्क जलते हैं तो जलने दो, हमने किसी का ठेका ले रखा है?'

सोमवार का दिन था और दफ्तर का काम खत्म हुआ चाहता था। बाबू त्रिलोकीनाथ इठलाता हुआ-सा दफ्तर में पहुंचा, तैरती नजर से उसने अपनी फाइलों की ओर देखा, तैरती नजर से ही आस-पास बैठे क्लर्कों को भी देखा जो सहसा बौने हो गए थे और जो अभी भी त्रिलोकी बाबू की ओर देखे जा रहे थे। त्रिलोकी बाबू मेज पर बैठे, पर बैठा न गया, फाइल खोली, पर उस पर से आंखें फिसल-फिसल जातीं, दफ्तर की किसी बात पर मन ही न टिकता था और दिल था कि बराबर कोई धुन बजाए चला जा रहा था!

शाम होते-होते त्रिलोकी बाबू कुछ धरती पर उतरे, पर दिल में मीठी-मीठी धूप अभी भी खिल रही थी। घर पहुंचे तो दरवाजे पर कुंतो मिली। कुंतो उनकी पत्नी थी। तीन बच्चों की मां होने के बावजूद उसकी आंखें चमकती थीं और घुंघराले बालों की एकाध लट माथे पर सदा झूलती रहती थी।

'सुबह डिब्बा ले जाते तो लौटते हुए वनस्पति तो लेते आते।'

त्रिलोकी ने ढाढ़स बंधाते हुए कुंतो की कुहनी पर हाथ रखा। अनहोनी बात!

त्रिलोकी दफ्तर से लौटकर सीधे मुंह कभी बात नहीं करता था। और तो और, कुंतो को पति की मूंछों के नीचे एक फरफराती-सी मुस्कराहट भी नजर आई।

खाट पर बैठकर बूट उतारने के बाद फटे हुए बदबूदार मोजों को बूटों में खोंसते हुए बाबू त्रिलोकीनाथ ने लापरवाही से कहा, 'आज खन्ना साहब मिले थे, बड़ी अच्छी तरह से मिले थे।'

'कौन-से खन्ना साहब?'

'वे, जो शिक्षा-विभाग में डाइरेक्टर हुआ करते थे। अब रिटायर हो गए हैं। किसी जमाने में मेरे प्रोफेसर रह चुके हैं।...'

कुंतो क्षण-भर के लिए पति के चेहरे की ओर देखती रही। फिर धीरे-से बोली, 'सुबह डिब्बा ले गए होते तो घर में वनस्पति तो होता। इस वक्त तो दाल छोंकने के लिए भी घर में घी नहीं है।' और उठकर रसोईघर की ओर जाने लगी।

'तुम भागी कहां जा रही हो, खन्ना साहब सेक्रेटरी से मेरी सिफारिश करने जा रहे हैं। आज हमारे दफ्तर ही आए थे। उन्होंने नोटबुक में मेरा नाम-पता भी लिख लिया है। कहने लगे, तुम्हें तरक्की जरूर मिलनी चाहिए।'

कुंतो ने चलते हुए ही मुड़कर देखा और बोली, 'जब करेंगे तो देखा जाएगा। अभी से क्यों नाचने लगूं?' और रसोईघर की ओर बढ़ गई।

त्रिलोकी कहता गया, 'बड़े प्यार से मिले। मुझे पहचानते ही बगलगीर हो गए, जब उन्हें मालूम हुआ कि मैं चौदह साल से क्लर्की कर रहा हूं, तो उनकी आंखों में आंसू आ गए।'

इस पर कुंतो हंस पड़ी और रसोईघर के दरवाजे में आकर खड़ी हो गई।

'सच, आंसू आ गए?'

'हां, तो उनकी आंखें नम हो रही थीं। वे मेरे प्रोफेसर रह चुके हैं न! कहने लगे, तुम जैसा होनहार चौदह साल से क्लर्की में बैठा है! मैं अपने जमाने में कालेज का सबसे अच्छा विद्यार्थी हुआ करता था...।'

'मैं जानती हूं', कुंतो बीच में ही बोल उठी, 'तुमने मैडल जीता। हॉकी के कप्तान रहे। लखनऊ में डिबेट में बोलने गए, पर कप नहीं जीत पाए, क्योंकि जज तुम्हारा मौसेरा भाई निकल आया। क्या मैं यह सब नहीं जानती?...'

और बात पूरी करती हुई वह फिर मुड़कर रसोईघर में चली गई।

वनस्पति के बिना खाना क्या बनता! कुंतो ने चावल उबाले, दाल चढ़ाई और बिना उसे छोंके चावलों में मिलाकर तीनों बच्चों को खिला दी।

पर जब बच्चे सो गए और पति-पत्नी अपने-अपने बिस्तर पर लेट गए, तो कुंतो का दिल मचल उठा। सिर के नीचे दोनों हाथ रखे वह चमकती-काली आंखों से देर तक छत को ताकती रही। काफी देर बाद उसे हल्की-सी झपकी आई, तो लगा जैसे रसोईघर में दाल छोंकी जा रही है और खालिस घी की महक सारे घर में फैल रही है। कुंतो ने करवट बदली, उसे लगा जैसे उसकी बड़ी बेटी झूला झूल रही है, उसने सफेद फ्राक पहन रखा है और उसके बालों में फूल लगे हैं।

कुंतो फिर आंखें खोलकर छत को ताकने लगी।

'क्यों जी, जागते हो?'

त्रिलोकी भी अपने गंजे सिर के नीचे दोनों हाथ बांधे छत की ओर ताक रहा था और देर से अपनी उधेड़-बुन में खोया हुआ था। बीवी की आवाज सुनकर चुप बना लेटा रहा।

'क्यों जी, सो रहे हो?'

'क्या है कुंतो, तुमने मुझे जगा दिया!'

'क्यों जी, क्या सचमुच तुम्हारी तरक्की होने जा रही है?'

'देखें क्या होता है! इतना आसान तो नहीं है, मगर आजकल सिफारिश के बिना कौन-सा काम होता है!'

थोड़ी देर चुप रहने के बाद कुंतो फिर बोली, 'तुम अफसर भी तो लग सकते हो! रजनी का पति पहले क्लर्क ही तो था, अब वह बड़ा अफसर बना हुआ है!'

त्रिलोकी चुप रहा, उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

कुंतो से रहा न गया। उछलकर पति के निकट चली गई।

'मुझे क्या दोगे जो तरक्की हो गई?' उसने हंसकर पूछा।

त्रिलोकी ने बुझी-सी आवाज में जवाब दिया, 'जब तरक्की होगी तो देखा जाएगा कुंतो, ये काम इतने आसान थोड़े ही होते हैं।'

'शाम के वक्त तो इतने चहक रहे थे, अब इतने गुमसुम क्यों हो गए हो? मैं कुछ तुमसे मांगती तो नहीं।'

त्रिलोकी फिर भी चुपचाप लेटा रहा। पर कुंतो की उत्तेजित कल्पना अभी भी तरह-तरह के ताने-बाने बुने जा रही थी।

'तुम रिश्वत भी लोगे न?'

'क्लर्की में से तो निकला नहीं हूं कुंतो, तुम्हें रिश्वत की सूझ रही है।'

'इसमें बुरा क्या है! आजकल सभी रिश्वत लेते हैं। ऊपर की आमदनी का अपना रौब होता है। खुद मांगने नहीं जाना, पर कोई दे दे तो इंकार भी न करना।'

त्रिलोकी ने पत्नी की ओर से पीठ फेर ली। कुंतो फिर भी बोलती गई, 'मैं गारगी का दहेज अभी से तैयार करने लगूंगी।' कुंतो ने बुदबुदाते हुए कहा, 'जल्दी में चीज कभी अच्छी नहीं बनती, धीरे-धीरे चीजें लेती रहूंगी।' कुंतो त्रिलोकी के गंजे सिर को धीरे-धीरे सहलाती और बुदबुदाती रही, 'पर मुझे अमीर औरतें अच्छी नहीं लगतीं। बहुत मुटिया जाती हैं और उठती-बैठती सारा वक्त डकार मारती रहती हैं। मैं मोटी नहीं होऊंगी, तुम्हारा सारा काम मैं अपने हाथ से करूंगी, खातिर जमा रखो।'

पति को फिर भी गुमसुम पाकर कुंतो तुनककर बोली, 'तुम भी कैसे रूखे आदमी हो जी, सीधे मुंह बात भी नहीं करते!' फिर हंसकर कहने लगी, 'अभी से मेरे साथ अफसरी करने लगे हो!'

सहसा कुंतो को पछतावा होने लगा। झट से उठ बैठी, 'हाय, मैं भी कैसी पापिन हूं, यों ही बके जा रही हूं! तुम्हारी तरक्की हो जाए तो पहली तनख्वाह में से तो मैं परसाद बांटूंगी, दुर्गा माई को भोग लगाऊंगी', कहते हुए कुंतो उठी और अंगीठी पर रखी दुर्गा माता की मूर्ति के सामने बार-बार सिर नवाने लगी, 'दुर्गा माता! मैं सबसे पहले तुम्हें भोग लगाऊंगी। मैं बहुत बकती रहती हूं, पर दिल की बुरी नहीं हूं, दुर्गा माई! मैं किसी का बुरा नहीं चेतती। मैं सबसे पहले तुम्हारी सेवा करूंगी। मुझे माफ करना दुर्गा माई, तुम तो इस घर की बड़ी हो, हम सबकी मां हो। मैं पढ़ी-लिखी तो नहीं हूं, मुंह से बातें निकल जाती हैं।'

और कुंतो ने हाथ जोड़े, आंखें बंद कर एक बार फिर दुर्गा माई के सामने माथा नवाया और सीधी अपनी खाट पर लौट आई और उसकी आंखें फिर छत को ताकने लगीं।

उधर त्रिलोकी दूर की सोचों में डूबा हुआ था और अधिकाधिक गहरा डूबता जा रहा था। छत को ताकते हुए उसे भी झपकी आ गई और उसने देखा कि सेक्रेटेरियट के लंबे गलियारे में कोई चपरासी उसकी फाइल बगल में दबाए भागा जा रहा है, त्रिलोकी उसे बुलाता है, पर वह रुकता नहीं और देखते-ही-देखते गलियारे के असंख्य दरवाजों में से किसी एक दरवाजे में से वह निकलकर चंपत हो जाता है और सारा सेक्रेटेरियट एक भूलभुलैया बन गया है। त्रिलोकी उसमें से निकलने की कोशिश अभी कर ही रहा था, तब एक झटके से उसकी नींद खुल गई और वह हांफता हुआ फिर छत को ताकने लगा। थोड़ी देर बाद बोला, 'सो रही हो या जाग रही हो?'

कुंतो चुप रही, यह सोचकर कि त्रिलोकी यह न समझ बैठे कि वह छोटी-सी तरक्की से इतनी उत्तेजित हो रही है।

'अभी तो बातें कर रही थी, अभी सो भी गई!'

'क्या है? तुम सोने भी नहीं देते।'

'मैं सोचता हूं, कल मैं दफ्तर नहीं जाऊंगा।'

पत्नी यह सुनते ही लपककर उठ बैठी, 'क्यों भला?'

'मेरी तबीयत कुछ ठीक नहीं है।'

'बहुत बनो नहीं, अब तरक्की होने जा रही है तो इन्हें दफ्तर ही जाना अच्छा नहीं लगता।'

थोड़ी देर चुप रहने के बाद त्रिलोकी फिर बोला, 'तुम समझती हो, खन्ना साहब ने वह चिट्ठी लिख दी होगी?'

'जो कहा है तो लिख दी होगी।'

सुनते ही त्रिलोकी का दिल एक सीढ़ी और नीचे उतर आया।

'मैं सोचता हूं, यह चिट्ठी लिखकर खन्ना साहब ने मेरे साथ बड़ी ज्यादती की है।'

'वाह जी, वे तो तुम्हारी सिफारिश करें और तुम समझो कि ज्यादती कर रहे हैं!'

'तुम दफ्तर के मामले नहीं समझती हो। सिफारिशी चिट्ठियों पर तरक्कियां मिलने लगें तो सभी क्लर्क अफसर बन जाएं...'

अबकी कुंतो चुप रही, उसको समझ में नहीं आ रहा था कि त्रिलोकी क्या कहे जा रहा है।

त्रिलोकी ने ठंडी सांस ली और करवट बदल ली।

'इससे तो बात बिगड़ जाएगी', वह बुदबुदाया।

'बिगड़ेगी क्यों?'

'मेरी तरक्की होगी तो बाकी क्लर्क क्या चुप बैठे रहेंगे? वे तो कल ही कानाफूसी करने लगे थे। मैं दफ्तर में लौटकर गया तो झट-से चुप हो गए।'

कुंतो इस पर चुप हो गई।

'सुन रही हो?'

'हां, सुन रही हूं।'

'खन्ना साहब तो मेरी सिफारिश सेक्रेटरी से करेंगे, पर वह तो बहुत बड़ा अफसर है। मेरी लगाम तो मेरे सुपरिंटेंडेंट के हाथ में रहती है। वह जरूर जल उठेगा। तुम इन छोटे अफसरों को नहीं जानती हो। वह डाह करने लगेगा और साल के आखिर में मेरी रिपोर्ट खराब कर देगा।'

'तुम बहुत चिंता न किया करो, तरक्की मिले, न मिले, तुम्हारी बला से।'

थोड़ी देर तक त्रिलोकी चुप रहा, फिर धीरे-से बोला, 'खन्ना साहब ने बैठे-बिठाए बखेड़ा खड़ा कर दिया। तरक्की तो होगी या नहीं, दफ्तर के बाकी लोग खामख्वाह मेरे दुश्मन बन जाएंगे। अब डायरेक्टर के साथ मेरा परिचय कराने की क्या जरूरत थी! वह उन्हें नीचे छोड़ने आया था। घंटा-भर मेरे कंधे पर हाथ रखे खुसफुस करते रहे। दफ्तर में जिसे मालूम नहीं था, उसे भी पता चल गया। भूल मुझसे हुई। अगर मैं उन्हें देखकर पीठ मोड़ लेता तो वे मुझे पहचान नहीं पाते, यह बखेड़ा उठता ही नहीं।'

कुंतो बोल उठी, 'मैं कहती हूं तुम डरा नहीं करो। तुम सबसे ज्यादा योग्य हो, अपने काम में सबसे आगे हो, अगर तुम्हारी यह डरने की आदत हट जाए तो तुम सोने के आदमी हो।'

'डर कौन रहा है! यों ही वाहियात बातें करने लगी हो।'

कुंतो धीरे-से बोली : 'मुझे छोड़कर तुम सबसे डरते हो और सच पूछो तो मुझसे भी डरते हो।'

'अच्छा-अच्छा, अब चुप रहो। बीवियां होती हैं जिनसे आदमी कोई दिल की बात करता है, कोई सलाह-मशविरा करता है। एक यह है कि बात-बात पर उपदेश झाड़ने लगती है।'

'नाराज हो गए? तुम बड़ी जल्दी रूठ जाते हो।...हाय, तुम्हारे हाथ ठंडे हो रहे हैं। अरे, और माथे पर पसीना आ रहा है। बात क्या है?'

'कुछ नहीं, कुछ नहीं। जाओ, तुम अपनी खाट पर जाकर सो रहो।'

'मैं नहीं जाऊंगी, पहले बताओ बात क्या है? तुम क्यों उल्टी-सीधी सोचा करते हो? खन्ना साहब ने चिट्ठी लिख दी तो कौन-सा गुनाह कर दिया! तुम्हारे भले के लिए ही लिखी है। खुद कह रहे थे कि सिफारिश के बिना काम नहीं चलता। अब किसी ने पीठ पर हाथ रखा तो उल्टा बिगड़ने लगे हो। अगर सुपरिंटेंडेंट ने देख लिया, तो तुम्हारी बला से। अगर क्लर्क जलते हैं तो जलने दो, हमने किसी का ठेका ले रखा है?'

'बात तो ठीक कहती हो, मैं यों ही ज्यादा सोचने लगता हूं। पर सुपरिंटेंडेंट रिपोर्ट तो खराब कर सकता है। मेरी चौदह साल की सर्विस धूल में मिला सकता है।'

'क्यों मिला सकता है? खालाजी का घर है क्या? उल्टा वह तुमसे डरेगा, तुमसे खम खाएगा। जान लेगा कि बड़े अफसर तुम्हारी पीठ पर हैं।'

पत्नी की आवाज में दृढ़ता का भास पाकर, त्रिलोकी आश्वस्त हुआ, उसे लगा जैसे उसकी पत्नी सुपरिंटेंडेंट की कलम को रोक सकती है।

'अच्छा जाओ, अब जाकर सो रहो। कुछ करूंगा, ठीक कर लूंगा, तुम जाओ सो रहो।'

कुंतो उठी और अपनी खाट पर जा लेटी। देर तक दोनों फिर छत को ताकते रहे। फिर धीरे-धीरे कुंतो को हल्की-हल्की झपकियां आने लगीं।

कोई घंटा-भर बाद कुंतो हड़बड़ाकर जागी और पति की खाट की ओर देखा। त्रिलोकी के बिस्तर पर से कोई आवाज नहीं आ रही थी। पहले तो आश्वस्त हो गई कि त्रिलोकी सो गया होगा, फिर उसे लगा जैसे बिस्तर खाली है। वह झट से उठकर बैठ गई और अंधेरे में बाहर की ओर झांककर देखा। त्रिलोकी बरामदे में खड़ा था, मेहराब से कंधा टिकाए हुए, फिर वह मेहराब पर से हट गया और टहलने लगा। पीठ के पीछे हाथ, गंजा सिर आगे की ओर झुका हुआ। प्रभात के झुटपुटे में अच्छा-भला आदमी भी प्रेत लगने लगता है।

'हाय, इन्हें क्या हो गया है? ऐसे भी कोई बात दिल को लगा लेता है!'

कुंतो खाट पर से उतर आई और बरामदे में पहुंची।

'तुम्हें मेरे सिर की कसम, अंदर चलो। हुआ क्या है जो तुम इतने परेशान हो रहे हो?'

त्रिलोकी ठिठक गया।

'तुम नहीं जानती कुंतो, मुझे लगता है खन्ना साहब ने वह चिट्ठी लिख दी होगी और मेरा काम चौपट हो जाएगा।'

'तुमने अपनी यह क्या हालत बना ली है? आखिर तुम्हें कोई नौकरी से निकाल तो नहीं रहा। अंदर चलो।'

'मेरी चौदह साल की सर्विस धूल में मिल जाएगी...'

'कुछ नहीं हुआ, कुछ नहीं होगा, तुम अंदर चलो।'

'तुम समझती क्यों नहीं हो कुंतो, मेरा वास्ता सेक्रेटरी के साथ नहीं पड़ता, मेरा वास्ता सुपरिंटेंडेंट के साथ पड़ता है। मेरी नकेल तो उसके हाथ में रहती है।'

और त्रिलोकी की आंखों के सामने फिर सुपरिंटेंडेंट का चेहरा घूम गया।

'तुम बात को समझा करो कुंतो, दफ्तर में सभी काम फाइलों पर होते हैं। सेक्रेटरी ने ज्यों ही मेरी फाइल मंगवाई कि सुपरिंटेंडेंट को पता चल जाएगा। बल्कि जिस तरह वह मुझे देख-देखकर मुस्करा रहा था, मुझे यकीन है, उसे अभी से पता चल चुका है। सुपरिंटेंडेंट चिढ़ गया है। वह दिल का अच्छा आदमी नहीं है। मुझसे यों भी डाह करता है, क्योंकि मैं उससे ज्यादा पढ़ा हुआ हूं। ये लोग जान-बूझकर रिपोर्ट खराब कर देते हैं।'

'अच्छा तुम इस वक्त तो अंदर चलो। देखा जाएगा जो होगा। सुबह होने को आई है और तुम पल-भर के लिए भी नहीं सो पाए। चलो अंदर।'

त्रिलोकी ने पत्नी का हाथ जोर से झटक दिया, 'तुम मुझे दम भी लेने दोगी या नहीं? दिन-रात पीछे पड़ी रहती हो। जब से इस घर में आई हो एक दिन चैन का नसीब नहीं हुआ।'

कुंतो धक् से रह गई। पर संयत होकर बोली, '...मुझे जो मन में आए कह लो। मगर अंदर चलो। घंटे-दो-घंटे सो लो। देखो, रात-भर बेचैन रहे हो।'

'हटो जी, यह क्या मजाक है...' त्रिलोकी ने अपने को छुड़ाने की कोशिश करते हुए कहा, फिर चुपचाप अंदर चला गया और सिसकी भरकर खाट पर लेट गया।

पक्षी चहक रहे थे, आकाश में सुहावनी सुबह की लाली खिल चुकी थी और मीठी-मीठी ठंडी हवा बह रही थी, तब त्रिलोकीनाथ खन्ना साहब के बंगले के बाहर खड़ा बार-बार अंदर झांक रहा था और निश्चय नहीं कर पा रहा था कि अंदर चला जाए या वहीं खड़ा इंतजार करे।

वह अभी सोच ही रहा था कि खन्ना साहब सुबह सैर के कपड़े पहने, खंखारते हुए बाहर निकले, 'कौन है? अरे त्रिलोकी, तुम कब से यहां खड़े हो? आओ, आओ अंदर चलो।' फिर वहीं खड़े-खड़े कहने लगे, 'माफ करना मैं अभी चिट्ठी नहीं लिख पाया। कुछ काम आ पड़ा था, बीच में ही रह गई। मैं आज जरूर लिख दूंगा।'

त्रिलोकी ने पहली बार आंख उठाकर खन्ना साहब के चेहरे की ओर देखा। एक क्षण में ही मनों बोझ उसकी छाती पर से, कंधों पर से और सिर पर से उतर गया।

'नहीं, नहीं खन्ना साहब, आप कष्ट न कीजिए।... मुझे...यों भी मुझे इस साल तरक्की मिल जाने की आशा है।...मेरी सर्विस काफी लंबी हो चुकी है, सर!'

खन्ना साहब हतबुद्धि-से त्रिलोकी के चेहरे की ओर देखने लगे। उन्हें आश्चर्य हुआ, कुछ गुस्सा भी आया कि इस क्लर्क ने मेरी सिफारिश को महत्त्व नहीं दिया। पर इस बात का इत्मीनान भी हुआ कि अनावश्यक उत्साह में जो चिट्ठी लिखने का वचन दे आए थे, उस पचड़े में से निकलने के लिए त्रिलोकी खुद चला आया था।

'हर्ज तो कोई नहीं था अगर लिख देता, मगर तुम अपने दफ्तर की बातों को मुझसे ज्यादा समझते हो, जो जरूरत नहीं, तो न सही।'

हल्के डग भरता हुआ त्रिलोकी दफ्तर को चला। थोड़ी देर बाद ही सेक्रेटेरियट के ऊंचे-ऊंचे गुंबद आंखों के सामने आए, रोज की तरह आसमान से बातें करते हुए। क्लर्कों की भीड़ साईकिलों पर उनकी ओर बढ़े जा रही थी। बाबू त्रिलोकीनाथ के पांव धीरे-धीरे फिर बोझिल होने लगे और मन फिर उधेड़-बुन में खोने लगा।

❖

धर्म की कट्टरता अपने-आप में सबसे बड़ा अधर्म और पाप है। धर्म के साथ कट्टरता का या रूढ़िवादिता का कोई मेल नहीं। धार्मिक कट्टरता को छोड़कर सारे सम्प्रदायों का निराकरण ही करना है, क्योंकि ये पंथ और सम्प्रदाय आज धर्म और आध्यात्मिकता का प्रतिनिधित्व नहीं करते।

—विनोबा भावे

हरीश भादानी की कविताएं

एक अकेला!

सबसे ऊपर,
बिन खंभों की मेड़ी बैठा
एक अकेला!

सबसे पहली
हर क्षण बीजवती रहती
यह धरती माता,
दूजी बैठी हुई तमोले
देखे जाए है नीलाभा,
इसके आगे और तीसरी
गर्भे, जाए वह द्यूलोकी गाय,
धारे और परोटे है तीनों मांओं को
एक अकेला!

झलमल-झलमल
दिप-दिपता वह आंगन,
एक नहीं, उंचासों पांखों
फर-फर करता पवन दूसरा,
तीजा सात बछड़ियों वाला सूरज,
एक मेरे पितरों को धारे है वह
एक अकेला!

इन तीनों में, उन तीनों में
रसमस-रसमस होकर भी जो
कभी न दुखता, कभी न सुखता
सत्य-स्वयंभू
एक अकेला!
निरा अजन्मा रहकर भी जो
ब्रहण करे,
ब्रह्मांड कहाए,
हो जाए फिर सहस्र अक्षरा वाक
एक अकेला!
सबसे ऊपर
बिन खंभों की मेड़ी बैठा
एक अकेला!

ऋग्वेद (1/164) पर आधारित

मही मां!

तू ही तो मही मां!
एक अकेली
सविता होकर भी उतरे तू
बछड़े हो-हो,
चसड़-चसड़ पी दूध स्वयं का
हो जाए तू सात रंग की गायें,
फिर अनगिनी
एषणाएं गदराकर
करती जाए तू अनंत से
ये-ये-वे रचनाएं,
सिरज-सिरजती हो जाए
तीनों लोकों की मां!
तू ही तो रचरचती बादल
तेरे रचे-रचाए ये ही
तुझमें ही घुल दमकें-गरजें,
तन-तन झर-झर बरसें ये ही
पी-पी इनको कोरी माटी
होती रहती बीजवती यह मां!

अन्नपूरणा होकर बोले,
बोल, अबोली, बोले जाए
इस, उसको, मुझ, सबको जाए,
फिर सब बोलें, मैं रंभाऊं
एक अकेली शब्दवती तू मां!
तू जगदा है, तू निखिला है,
अदिति तू है, तू विराज है,
तेरा ही है नाम दक्षिणा
तू ही तो सबको धारे है,
तेरी छाया पिएं, जिएं हम,
अपने केवल एक रूप को
इन-उन रूपों में रूपे तू
यह तेरी महिमा!
तू ही तो मही मां!

❖❖

शीलन

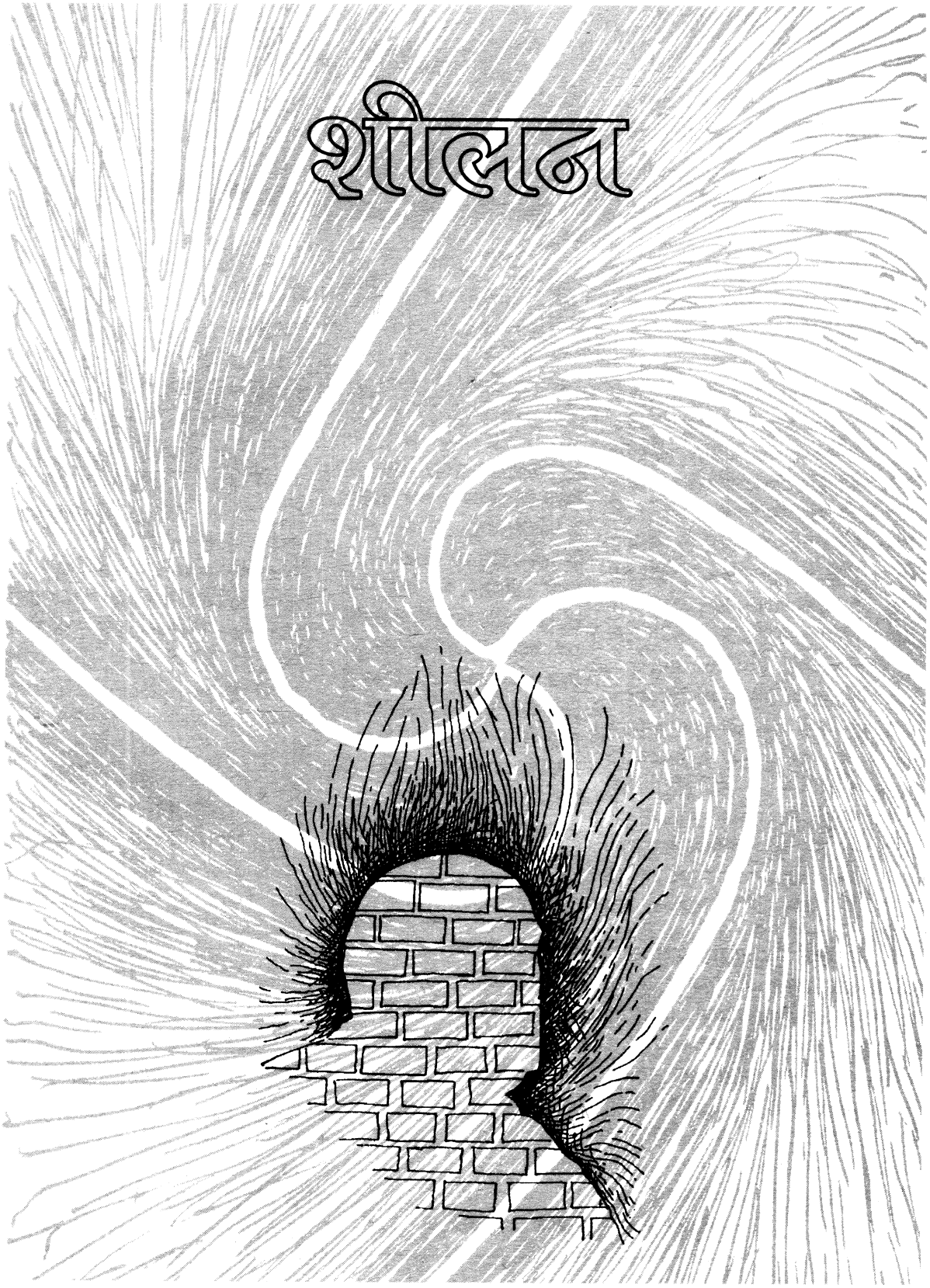

विधि का अर्थ है आज्ञा। स्मृतियों में विधि अनेक बार आया है। स्मृति कहती है कि प्रत्येक कर्म विधिपूर्वक करो। विधि का मतलब है शास्त्र-वचन। विधि का अर्थ है स्मृति का बताया हुआ विधान। विधि का मतलब है धर्म। स्मृतिकार कहते हैं कि जो कर्म विधियुक्त नहीं हैं, वे अधार्मिक हैं। परंतु कौन-सी विधि, किसलिए विधि, किसके लिए आज्ञा, किसके लिए बंधन, किसके लिए मर्यादा?

—पांडुरंग सदाशिव साने

धर्मेण हीनाः पशुभिः समाना

❑ ❑

❑ गिजुभाई ❑

यह सही है कि 'धर्मेण हीनाः पशुभिः समाना।' लेकिन धर्म का तत्त्व तो अंतर की गुफा में रहता है। इसके लिए तो भीतर के द्वार खोलकर झांकना पड़ता है। धर्म की वास्तविकताओं का ज्ञान, कर्मकांड का क्रियाडंबर, पांडित्य, हठयुक्त जप-तप आदि धर्म नहीं हैं, धर्म के सुंदर कवच मात्र हैं। धार्मिकता का मूल्य इसी भावना के जागृत होने में है, अन्यथा वह दंभपोषी सिद्धांत बन जाती है। धार्मिकता का अर्थ कीर्तिदान नहीं, स्वार्थपूर्ण समर्पण या प्रतिफल की उम्मीद में की गई भक्ति नहीं, धार्मिकता एक वृत्ति है। सद्-असद्-विवेक-बुद्धि इस धर्म-मार्ग का आकाश-दीप है। संयमित क्रियाशक्ति में इसकी प्राण-शक्ति विद्यमान रहती है। सद्-असद्-विवेक-बुद्धि याने इंद्रियों की शुद्धि व संस्कारिता तथा मन की निर्मल ग्रहण शक्ति, मापन-शक्ति व निर्णय शक्ति; और क्रिया-शक्ति का संयमन यान निर्णय-प्रेरित क्रिया के प्रत्यक्ष पुनरावर्तन में से उत्पन्न होने वाली क्रिया को करने या न करने का बल। निर्णय-शक्ति एवं बल उपदेश से उद्भूत नहीं होते, न तर्क-विषयक पुस्तकें पढ़ने से हाथ लगते। ये तो इन्हें करने की क्रिया से ही उद्भूत होते हैं। खूबी की बात यह है कि साधारण लकड़ी के गट्टों व अन्य उपकरणों को प्रयोग में लाने में निर्णय तथा पुनरावर्तन की क्रिया चलती ही रहती है। प्रत्येक काम में बुद्धि-प्रयोग व क्रिया-शक्ति निहित रहती ही है, पर निर्णय तक पहुंचने के लिए मन को विवश किया जाए, मापन-सामग्री उपलब्ध की जाए तथा बुद्धि द्वारा निश्चित विचार को अमल में लाने हेतु साधन-सुविधा प्रदान की जाए, तभी निग्रह-शक्ति विकसित हो सकती है। ऐसी साधन-सामग्री अगर किसी एक स्थान पर और एक ही चीज में उपलब्ध हो सकती है, तो वह है मोंटेसरी का प्रबोधक साहित्य। उस साहित्य की शास्त्रीयता का यही अर्थ है और अनिवार्यता का यही कारण है।

मोक्ष या आत्म-साक्षात्कार के संबंध में तो उसी व्यक्ति को बोलने का अधिकार है, जो स्वयं मुक्त हो या आत्मज्ञानी हो। लेकिन फिर भी हम लोगों ने अपनी निम्न भावनाओं से मुक्ति हासिल की है। पशु स्वयं को जितना पहचान पाए हैं, उनसे कहीं अधिक हमने अपने को पहचाना है, अपनी क्षमता को जाना है। इस तरह स्थूल से सूक्ष्म में, अंधकार से प्रकाश में तथा पशुता से मानव बनने की दिशा में जाने वाला, इंद्रियों के स्थूल भोग से सूक्ष्म-संस्कारी क्रिया की तरफ जाने वाला, मन के स्थूल वैभवों से सूक्ष्म तत्त्व-चिंतन की तरफ जाने वाला तथा समस्त मानवीय क्षुद्रताओं से मुक्त होते-होते ऊंचाई की तरफ जाने वाला मनुष्य ही सच्चे अर्थ में मुमुक्षु है। ऐसी प्रवृत्ति का मार्ग ही मुक्तिमार्ग है।

इस साधन को प्रयोग में लाने से बालक की अमूर्त क्षेत्र में जाने की तथा सूक्ष्म व दूरस्थ प्रदेशों को देखने एवं भावों को तीव्रता से अनुभव करने की शक्ति खिलती है। इसी का नाम है कल्पना-शक्ति। इस शक्ति की सहायता से दरिद्रता की पीड़ा समझने की, महात्माजी की देश-प्रेम की वाणी ग्रहण करने की, प्रजा के दुख-दर्दों को अपना समझकर अनुभव करने की क्षमता प्राप्त होती है। इन तीनों शक्तियों वाला इनमें से एक-एक शक्ति-युक्त मनुष्य ही समर्थ कवि, महान शोधक, प्रखर राजनीतिज्ञ और अद्वितीय योद्धा बनता है। पर धार्मिकता अभी एक और अधिक तत्त्व की अपेक्षा रखती है, और वह है प्रेम। जीवन की उत्कृष्टता व परम सफलता इस तत्त्व की प्राप्ति में निहित है। इस तत्त्व ने समस्त सचराचर जगत को जोड़ रखा है। यह वस्तु सृष्टि के संपूर्ण पदार्थों में जंतुओं

आदि से लेकर देवताओं तक की दुनिया में स्वयं विद्यमान है। वैज्ञानिकगण इसे स्थूल वस्तु के प्रति आकर्षण कहते हैं, पशु-जगत में स्वाभाविक प्रेरणा कहते हैं और मनुष्यों में इसे प्रेम के नाम से पहचाना जाता है। यह तत्त्व बालक को मां के दूध के साथ उपलब्ध होता है और यहां से यह आगे विकसित होता है। यह तत्त्व मनुष्य की संजीवनी है। इसके विकास में मनुष्य-जीवन का उद्धार है। बुद्ध, मुहम्मद, क्राइस्ट और हमारे गांधीजी इसी एक तत्त्व के कारण पैगंबरों की तरह विख्यात हैं।

जब मनुष्य में प्रेम घटता है तभी जीवन को निचोड़ डालने जैसे कलह-क्लेश खड़े होते हैं। वर्तमान जीवन-प्रणाली, लगता है जान-बूझकर मनुष्य को इस तत्त्व से वंचित रख रही है। व्यापार से यह तत्त्व बहिष्कृत हो चुका है। दुनिया में यह तत्त्व प्रतिदिन घिस-पिट कर स्वार्थ के समतुल्य बनता जा रहा है। युद्ध के मैदान में इस तत्त्व का स्वप्न तक नहीं आता। विद्यालय में, बाजार में, कारखाने में अगर कोई इस तत्त्व के आधार पर जीने की बात कहे तो लोग बात को हंसी में उड़ा देते हैं। मित्र-मित्र के बीच, सेठ-नौकर के बीच, पति-पत्नी के बीच का संबंध भी इस तत्त्व से रहित देखने में आता है। इन्हीं कारणों से आज का मानव धार्मिकतारहित है। महामारी के दिनों में जब कोई अशिक्षित व उजड्ड समझा जाने वाला देहाती विद्वान, ज्ञानी व प्रतिष्ठित समझे जाने वाले पुत्र-पुत्रियों द्वारा छुतहा रोग लग जाने के भय से परित्यक्ता वृद्धा की आगे आकर सेवा-शुश्रूषा करने लगता है, तो वहां धार्मिकता के दर्शन होते हैं। एक बड़ा राजा गरीबों की झोंपड़ी-झोंपड़ी तक जाकर अगर दीन-दुखियों की सेवा करता है, तो वह धार्मिक कहा जाएगा। कोई मूर्ख बाबा रास्ते जाते प्यासे राहजनों को जब अपनी आधी रोटी में से चौथाई उन्हें खिलाता है और अपने लोटे-भर पानी में से आधा पानी पीने को देता है तो उसके हृदय में सच्ची धार्मिकता है, यही समझना चाहिए। कोलकाता में शरणार्थी शिविर में जब एक पागल, दुष्ट अर्धनग्न महिला की सेवा-चाकरी करते तथा मां से बिछुड़े एक बालक की मां की तरह संभाल लेते एक सेवाभावी महिला को मैंने देखा, तो मुझे एक सच्चे क्रिस्तान का परिचय जानने को मिला।

निर्मल बुद्धि, क्रिया-शक्ति, कल्पना-शक्ति तथा प्रेम—इन चारों के सम्यक् विकास में मनुष्य की धार्मिक वृत्ति का उदय है। इस अंतिम तत्त्व के विकास हेतु मोंटेसरी ने त्रिविध योजना प्रदान की है। प्रबोधक साहित्य के इस्तेमाल से सत्य, सजगता व एकता; बालक के आंतरिक स्नेह-संबंध से सहिष्णुता, मैत्री व समानता तथा शिक्षक-शिक्षार्थी के संबंधों से वत्सलता एवं बाल-स्नेह का विकास—इन सबों के परिणामस्वरूप प्रेम का तत्त्व प्रकट होता है। इसके लिए मोंटेसरी पद्धति की बलिहारी है। नई शिक्षा दृष्टि के लिए यह सहजतया करणीय कार्य है।

मोक्ष या आत्म-साक्षात्कार के संबंध में तो उसी व्यक्ति को बोलने का अधिकार है, जो स्वयं मुक्त हो या आत्मज्ञानी हो। लेकिन फिर भी हम लोगों ने अपनी निम्न भावनाओं से मुक्ति हासिल की है। पशु स्वयं को जितना पहचान पाए हैं, उनसे कहीं अधिक हमने अपने को पहचाना है, अपनी क्षमता को जाना है। इस तरह स्थूल से सूक्ष्म में, अंधकार से प्रकाश में तथा पशुता से मानव बनने की दिशा में जाने वाला, इंद्रियों के स्थूल भोग से सूक्ष्म-संस्कारी क्रिया की तरफ जाने वाला, मन के स्थूल वैभवों से सूक्ष्म तत्त्व-चिंतन की तरफ जाने वाला तथा समस्त मानवीय क्षुद्रताओं से मुक्त होते-होते ऊंचाई की तरफ जाने वाला मनुष्य ही सच्चे अर्थ में मुमुक्षु है। ऐसी प्रवृत्ति का मार्ग ही मुक्तिमार्ग है।

मेरे मत से मोंटेसरी-पद्धति के उपकरणों द्वारा इंद्रियां व मन यानी संपूर्ण मनुष्य दिनो-दिन मुक्त बनता जाता है, यही नहीं, वहीं से उसे मुक्त होने की कला व मार्ग सुलभ होते हैं। आत्म-साक्षात्कार का अंतिम अनुभव तो वही जानता है जो उसका अधिकारी हो, लेकिन मनुष्य जब से अपनी इंद्रियों व मन के विकारों, अविकारों, वेगावेग को पहचानने लगता है; तभी से वह आत्मदर्शन की दिशा में बढ़ने लगता है। इस बात को वह व्यक्ति अच्छी तरह से समझता है जिसने अपने बारे में, स्वयं उसके भीतर क्या-कुछ चल रहा है, इस संबंध में अकेले बैठे बालक को एकाग्रता में डूबे देखा है। बालक जैसे एकाएक जागता है और बोल उठता है : 'ओहो, यह यहां कहां से आया?' 'मेरे तो पांच उंगलियां हैं।' 'मैं उनसे बड़ा हूं।' 'कल मुझे यह काम नहीं आता था, आज आने लगा।' 'वह आकाश नीला है।' तो इन वाक्यों के द्वारा बालक अपना आत्म-साक्षात्कार भी करता जाता है—अपनी पूरी पहचान करता जाता है।

किसी को लगेगा कि जिस प्रकार महाकवि बाण की कादंबरी में संपूर्ण साहित्य समाहित है वैसे ही मोंटेसरी पद्धति में संपूर्ण साहित्य समाहित है। किसी को लगेगा कि जिस प्रकार भगवान बुद्ध कहते थे कि बुद्ध ही एकमात्र वैद्य हैं, उन्हीं की शरण में जाओ, उनके संघ की शरण में जाओ,

शेष पृष्ठ 54 पर

जपात् सिद्धि न संशयम्

साध्वी लावण्यश्री

मंत्र वह विद्या और विज्ञान है जिससे शक्ति का उद्भव होता है। यह वह ज्ञान और प्रकाश है, जिससे अज्ञान और अंधकार को दूर किया जा सकता है। मंत्र की परिभाषा देते हुए कहा गया—अक्षरों के संयोजन-विशेष का नाम मंत्र है। शब्दशास्त्र के अनुसार 'मंत्रं गुप्त भाषणे' से मंत्र शब्द बना है जिसका अर्थ है—गुप्त भाषण और रहस्य की साधना। 'मंत्रा मननात्' से यह ध्वनित होता है कि जो बात मनन करने योग्य है, वह सब मंत्र शक्ति का रूप है—

मननात् सर्वभावना त्राणात् संसार सागरात्।
मंत्र रूपाहि तत् शक्ति, मननत्राण रूपिणी॥

मनन करने से प्रत्येक साधारण बात असाधारण बन जाती है, जो कार्य प्रयत्न से नहीं बनता वह एक बार के शब्द के मानसिक संकल्प से बन सकता है। इसी आधार पर प्रभावशाली वाणी और प्रभावक विचारशक्ति को क्रमशः वाग्-विद्या और विचार-विद्या का रूप दिया गया है। यह विद्या शब्द मंत्र का ही दूसरा नाम है। मंत्र-जप एक पूर्ण यौगिक एवं वैज्ञानिक विधि है जिससे शब्दशक्ति का चामत्कारिक उद्बोधन होकर निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है। हमारे सूक्ष्म शरीर में प्रसुप्त यौगिक केंद्र, चैतन्य केंद्र, ग्रंथियां एवं चक्रादि हैं, जो मंत्र-जाप के द्वारा जागृत होकर विराट ईश्वरीय शक्ति का बोध कराते हैं। मंत्र-साधना आत्मिक उत्थान के पथ पर अग्रसर होने के लिए नितांत आवश्यक है। महर्षि पतंजलि-

मनन करने से प्रत्येक साधारण बात असाधारण बन जाती है, जो कार्य प्रयत्न से नहीं बनता वह एक बार के शब्द के मानसिक संकल्प से बन सकता है। इसी आधार पर प्रभावशाली वाणी और प्रभावक विचारशक्ति को क्रमशः वाग्-विद्या और विचार-विद्या का रूप दिया गया है। यह विद्या शब्द मंत्र का ही दूसरा नाम है। मंत्र-जप एक पूर्ण यौगिक एवं वैज्ञानिक विधि है जिससे शब्दशक्ति का चामत्कारिक उद्बोधन होकर निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है। हमारे सूक्ष्म शरीर में प्रसुप्त यौगिक केंद्र, चैतन्य केंद्र, ग्रंथियां एवं चक्रादि हैं, जो मंत्र-जाप के द्वारा जागृत होकर विराट ईश्वरीय शक्ति का बोध कराते हैं। मंत्र-साधना आत्मिक उत्थान के पथ पर अग्रसर होने के लिए नितांत आवश्यक है।

प्रणीत 'योगदर्शन' में कहा गया है कि जल ओषधि, मंत्र-जप और समाधि से सिद्धियां प्राप्त होती हैं। मंत्र-जप से बिखरी हुई मानसिक शक्तियां केंद्रित होकर सूक्ष्म शक्तियों के विकास का मार्ग प्रशस्त कर देती हैं। मंत्र का संबंध सूक्ष्म ध्वनि तरंगों से होता है। ध्वनि तरंगों में विद्युत की तरह इतनी शक्ति गुंफित रहती है कि जिस उद्देश्य से लक्षित होती है वह उद्देश्य सहज ही पूरा हो जाता है। इसलिए मंत्रशास्त्रियों ने बार-बार कहा है कि 'जपात् सिद्धि, जपात् सिद्धि, जपात् सिद्धि न संशयम्:।' मंत्र-जप से शक्ति उत्पन्न होकर सिद्धि की प्राप्ति होती है। इसमें संशय नहीं कि मंत्र-जप से अनेक आध्यात्मिक और भौतिक उपलब्धियों की प्राप्ति होती है।

मंत्रशक्ति का प्रयोग एवं उपयोग आसुरी शक्तियों के नाश, चरित्र के विकास, मनोबल की वृद्धि, बुद्धि की प्रखरता, आत्मिक उत्थान के अतिरिक्त अनेक प्रकार के भौतिक लाभ—यथा धन लाभ, आरोग्य प्राप्ति, विपत्ति निवारण, आयु वृद्धि, शत्रुओं से रक्षा के लिए प्राचीन काल से ही किया जाता रहा है। प्राचीन काल में युद्ध के अस्त्र-शस्त्रों में मंत्र को एक प्रमुख शक्ति माना जाता था। मंत्रों से अभिमंत्रित दिव्यास्त्र, आग्नेय अस्त्र आदि होते थे। मंत्रशक्ति से शत्रु सेना में अग्नि की ज्वालाएं भभक उठती थीं और मंत्र से अग्नि बुझाने के लिए वर्षा भी कर ली जाती थी। मंत्रों से भयंकर

अस्त्र-शस्त्रों का प्रयोग होता था, जिससे प्रलय आने तक की संभावना होती थी। इन सब बातों का इतिहास साक्षी है। रामायण, महाभारत आदि ग्रंथों में इसकी पुष्टि में अनेक प्रमाण मिलते हैं।

मंत्र-साधना की जटिलता के कारण भारतीय प्राच्य विद्या की उपेक्षा ही रही है क्योंकि वर्तमान युग में प्राचीन काल की कठोरता का निर्वाह संभव नहीं रह गया है। न ही वैसा वातावरण, न ही परिवेश, न ही सामाजिक, राजनीतिक परिस्थितियां हैं और न वैसे शुद्ध मूल-द्रव्य ही हैं। इसके अतिरिक्त आजकल साधक परिश्रम से जी चुराते हैं। मंत्र की साधना में धृति की बहुत जरूरत होती है। मंत्र-साधना में कुछेक बातों का ध्यान रखना चाहिए। उनमें प्रधान यह कि मंत्रोच्चारण-शुद्धि आवश्यक है। उच्चारण के अतिरिक्त भी कुछ बातें आवश्यक हैं—

व्यवहार-शुद्धि

मंत्र-साधक का व्यवहार सुंदर हो, मृदु हो, कपट-माया रहित होना चाहिए। दुराचारी, अन्यायी व्यक्तियों पर मंत्र-साधना का प्रभाव उतना ही पड़ता है जितना जलते तवे पर पानी की बूंदों का। आध्यात्मिकता के लिए समुचित व्यवहार एवं पवित्र चरित्र चिंतन भी उत्कृष्ट होना चाहिए।

आहार-शुद्धि

मंत्र-साधक को लंघन करना चाहिए। साधना में तपस्या हो तो मंत्र शीघ्र सिद्ध होने की स्थिति में होते हैं। मंत्र-साधक का आहार हित, मित एवं सात्त्विक होना चाहिए। खान-पान पूर्ण शुद्ध हो। अभक्ष्य खाने वाले, बहुभक्षी, नशे वाले व्यक्ति मंत्र-साधना में सफलता हासिल नहीं कर सकते। क्योंकि उसकी विकृत मानसिकता एवं उच्छृंखल क्रियाशीलता यदि रुके नहीं तो मलीनता की मात्रा इतनी अधिक संचित हो जाती कि साधना के स्वल्प प्रयास को भी कामयाब नहीं होने देती। इसलिए मंत्र-साधक को आहार की सात्त्विकता, संयमशीलता बनाए रखने का निर्देश विज्ञ पुरुष देते हैं।

अटूट विश्वास

मंत्र की सशक्तता के लिए मंत्र की प्रामाणिकता पर अटूट विश्वास होना बहुत जरूरी है। विश्वास को साधना का प्राण कहा है। श्रद्धा या विश्वास अपने-आप में एक शक्ति है। विश्वास और श्रद्धा द्वारा उत्पन्न ऊर्जा से अनेक विपदाओं को परास्त होते देखा गया है। इस आलंबन को मजबूती से पकड़े रहने वाले अपने जीवन में ऊंचे उठ जाते हैं।

मंत्रशास्त्र के अधिकृत आचार्यों ने मंत्र-सिद्धि के मुख्यतः तीन लाभ बताएं हैं—निरामयता, निर्विकारता, निर्भयता। पूज्यप्रवर गुरुदेव तुलसी का अनुभव है कि जप से मुख्यतः तीन निष्पत्तियां घटित होती हैं—आत्मविकास, आत्मशांति और आनंद की प्राप्ति।

आध्यात्मिक विकास, बुरे ग्रहों से विराम, रोग निवृत्ति हेतु मंत्रों की साधना के लिए कुछ अन्य जानकारी रखना भी अपेक्षित हो जाता है। शास्त्रों में कहा है—1. नक्षत्र, तिथि, वार का सामंजस्य हो—उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, अश्विनी, श्रवण, विशाखा, मृगशिर नक्षत्रों में। 2. द्वितीया, तृतीया, पंचमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, त्रयोदशी, पूर्णिमा तिथियों में। 3. वार—रवि, सोम, बुध, गुरु, शुक्र, इन वारों में—इनमें भी गुरुवार की शुरुआत श्रेष्ठ मानी गई है। 4. दिशा—पूर्व, उत्तर, अथवा ईशान कोण की ओर अभिमुख होकर बैठें। 5. पद्मासन, अर्धपद्मासन, वज्रासन, सुखासन, स्वस्तिकासन आदि आसनों में से। 6. जप आत्मविकास व शांति के लिए ब्रह्ममुहूर्त या तीसरा प्रहर अथवा त्रिसंध्या करें। 7. माला को तर्जनी अंगुली का स्पर्श त्याज्य है। अंगूठे के सहारे मध्यमा या अनामिका अंगुली से माला करनी श्रेष्ठ बताई है। साधक के लिए नवरात्रि में आसोज सुदी सातम, आठम, नवमी को तीन दिन या दीपावली पर कार्तिक कृष्णा तेरस, चवदस, अमावस्या को—इन तीन दिन नमस्कार महामंत्र आदि इष्ट मंत्रों की साधना करनी उत्तम बताई है।

9. ब्रह्मचर्य का पालन, चौविहार तेला, एक आसन पर बैठकर एकाग्रचित्त से की गई साधना इष्टकारी बन सकती है। किसी भी प्रकार के उपसर्ग से डरें नहीं। जिस किसी को मंत्र आदि की साधना करनी हो वे सब गुरु के मुखारविंद से ही फरमाए हुए मंत्रों की साधना करें। यह सब साधना गुरुगम्य है। अपने-आप पुस्तकों से पढ़कर मंत्र की साधना नहीं करनी चाहिए। णमोकार महामंत्र की साधना सर्वकाल, सर्वसमय, सर्वदृष्टि से अति मंगलकारी, कल्याणकारी, शुभकारी एवं सर्वसिद्धिदायक साधना है। इसकी साधना करने वाला निश्चय रूप से संसार-सागर से पार पा लेता है।

हीरा छोटा होता है, पर बड़ी-बड़ी चट्टानों को काट देता है। अंकुश छोटा होता है, किंतु मदोन्मत्त गजराज को अधीन कर लेता है। बीज छोटा होता है, किंतु विराट वृक्ष का रूप धारण कर लेता है। वैसे ही मंत्रों का राजा मंत्र णमोकार मंत्र छोटा है, फिर भी आठ कर्मों की निर्जरा होती है, अभिनव ज्योति पैदा होती है, अशुभ विचारों से मन मुक्त हो जाता है। ❖

धर्म : उपासना भी; आचरण भी

❑ साध्वी गवेषणाश्री ❑

धर्म शब्द धृ धातु एवं मन या म प्रत्यय से निष्पन्न होता है। उसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है—धारण करना।[1] दूसरे शब्दों में—दुर्गति में गिरते हुए प्राणियों को बचाना है।[2]

संस्कृत में धर्म शब्द अनेक अर्थों में प्रयुक्त है। आप्टे के संस्कृत-अंग्रेजी कोश में धर्म शब्द के संप्रदाय, प्रचलित परंपरा, फर्ज, न्याय, गुण आदि अनेक अर्थ बताए गए है। ऋग्वेद में धर्म शब्द प्रायः धार्मिक विधियों या संस्कारों के लिए प्रयुक्त हुआ है। धर्म जीवन का रक्षा कवच है, जीवन का आधार है। कोई भी प्राणी, पानी, हवा और भोजन के बिना नहीं जी सकता। उनकी जीवन में अनिवार्यता है, उनसे भी बढ़कर धर्म की आवश्यकता है।

कर्तव्य, रीति-रस्म, दायित्व, लोक-व्यवहार, स्वभाव और अस्तित्व—ये सब धर्म के पर्याय हैं। अनेक अर्थों का संवाहक है धर्म। उसके लौकिक और लोकोत्तर—दो प्रकार के रूप हैं। लौकिक के अंतर्गत ग्रामधर्म, राष्ट्रधर्म, कुलधर्म, देशधर्म, गणधर्म का प्रावधान है। लोकोत्तर आत्मशुद्धिपरक है। मानसिक प्रसन्नता, व्यवहार की शुद्धता लोकोत्तर के फलित हैं। धर्म व्यक्तिगत होता है, किंतु व्यक्ति अकेला नहीं होता। वह समाज में जीता है, उसके आचरणों का प्रभाव समाज पर होता है। धर्म की सामूहिकता इससे सिद्ध है।

धर्म शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर होता है, किंतु धर्म के मौलिक स्वरूप का स्पर्श नहीं हो पा रहा है। यही कारण है—भ्रष्टाचार, अनैतिकता, अप्रामाणिकता की वृद्धि के लिए सब ओर उर्वरा भूमि बनती जा रही है। उपासनाप्रधान धर्म व्यापक है, पर आचरण पक्ष उपेक्षित है। धर्म को मनमाने अर्थ-सांचे में ढाला जा रहा है। धर्म को सुविधा का साधन मान लिया गया है।

जैन आगमों में धर्म के विभिन्न भेदों की बहुत ही स्पष्ट रूप से व्याख्या की गई है।

अस्तिकायधर्म—अस्ति भूत भविष्यति इति अस्तिकायः। जो है, था और होगा, वह अस्तिकाय है। त्रैकालिक सावयव सप्रदेशी पदार्थ अस्तिकाय है।[3] जैसे—गति सहायक द्रव्य-धर्मास्तिकाय।

तत्त्वार्थ सूत्र में सत् की व्याख्या करते हुए लिखा है—सत् द्रव्यम्। जो सत् है, पदार्थ है—वह द्रव्य है। जो उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पर्यायों को धारण करता है—वह द्रव्य है। द्रव्यधर्म अस्तित्व का प्रतीक है। जिसमें तीनों की व्याप्ति है—वह द्रव्यधर्म है।[4]

धर्म शब्द का व्यवहार और भी अनेक प्रसंगों में किया जाता है। तेरापंथ के प्रणेता आचार्य भिक्षु ने कहा—धर्म शब्द के अनेक अर्थ हैं—

1. धर्म शब्द का एक अर्थ—स्वभाव। जैसे अग्नि का स्वभाव—धर्म है उष्णता।

2. धर्म शब्द का एक अर्थ—कर्तव्य। जैसे राष्ट्र की सुरक्षा करना सैनिक का कर्तव्य (धर्म)।

3. धर्म शब्द का एक अर्थ—व्यवस्था। नगर की व्यवस्था करना धर्म है।

4. धर्म शब्द का एक अर्थ—सहयोग। असहायों की सहायता करना सामाजिक धर्म।

5. धर्म शब्द का एक अर्थ—न्याय। अपराधी को दंड देना न्यायाधीश का धर्म।

6. धर्म शब्द का एक अर्थ—आध्यात्मिक आचरण। जैसे—ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप की आराधना करना आध्यात्मिक धर्म है।

इस प्रकार धर्म शब्द का प्रयोग अनेक स्थलों पर होता है, किंतु धर्म के मौलिक स्वरूप का स्पर्श नहीं हो पा रहा है। यही कारण है—भ्रष्टाचार, अनैतिकता, अप्रामाणिकता की वृद्धि के लिए सब ओर उर्वरा भूमि बनती जा रही है। उपासनाप्रधान धर्म व्यापक है, पर आचरण पक्ष उपेक्षित है। धर्म को मनमाने अर्थ-सांचे में ढाला जा रहा है। धर्म को सुविधा का साधन मान लिया गया है।

प्राचीन महर्षियों ने चार पुरुषार्थों की चर्चा की—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। धर्म का स्थान पहला है। मोक्ष का अंतिम। काम का साधन अर्थ है और मोक्ष का साधन धर्म। धर्म की यथोचित साधना ही मोक्ष की हेतुभूत है। मनु, गौतम, याज्ञवल्क्य आदि ने भी मोक्षधर्म को ही श्रेष्ठ माना है। भगवान महावीर ने धर्म के लक्षण तीन बताए हैं—अहिंसा, संयम और तप।[5]

अहिंसा

हिंसा का प्रतिपक्षी तत्त्व अहिंसा है। दुष्प्रयुक्त मन, वचन, काया की प्रवृत्ति मात्र हिंसा है[6] सूत्रकृतांग में उल्लेख है—मृत्यु से लेकर रोम उखाड़ने तक से मुझे दुख होता है, भय होता है। प्राणीमात्र के लिए सुख प्रिय है, जीवन प्रिय है।[7] ऐसी स्थिति में दुख देना, पीड़ा देने का चिंतन भी हिंसा है। मानसिक हिंसा अव्यक्त है। दूसरा समझ नहीं पाता, किंतु चिंतन की दुर्बलता स्वयं से अज्ञात नहीं है। हिंसा का उद्गम स्थल मानसिक भूमि है। शरीर और वाणी अभिव्यक्ति के साधन हैं। मानसिक हिंसा की प्रबलता का संवादी प्रमाण है—तंदुलमच्छ।

संयम

हिंसादि आश्रवों की विरति संयम।[8] राग-द्वेषरहित समभाव में स्थित होना संयम है। आचार्य तुलसी ने आचार-बोध में सत्तरह प्रकार के संयम का विवेचन किया है।

सत्तरह संयम में प्रथम पांच हैं स्थावर,
त्रस द्वींद्रिय आदि चारों है यायावर,
जड़-अजीव प्रेक्षा और उपेक्षा संयम
उत्सर्ग प्रमार्जन में भी संयम का क्रम,
मन, वाणी वायु का संगोपन-संरक्षण,
मुनि करे समायोजन इन सबका क्षण-क्षण।।[9]

हरिभद्रसूरि ने संयम का अर्थ किया—'आश्रवद्वारोपरम' आश्रव द्वार अर्थात्—हिंसा, मृषा, अदत्तदान, मैथुन और परिग्रह—ये कर्म आने के द्वार हैं, उनसे विरत होना ही संयम है।

तप

तापयति अष्टप्रकारं कर्म इति तपः।[10] अष्टप्रकार की कर्म-रजों का विलय करने वाला तप है। संक्षिप्त में तप के दो प्रकार हैं—बाह्य तप और आंतरिक तप। विस्तार में जाएं तो अनशन, ऊनोदरी, रस-परित्याग, कायक्लेश आदि बारह भेद हैं। अहिंसा, संयम और तपयुक्त धर्म ही उत्कृष्ट धर्म हैं। विभाव से स्वभाव, संसार से मुक्त की ओर बढ़ाने वाला परम धर्म है।

धर्म की कसौटी

आचार्य भिक्षु की सूक्ष्मग्राही मेधा ने धर्म की पहचान के पांच आधार प्रस्तुत किए हैं—

1. आज्ञा धर्म : अनाज्ञा अधर्म, 2. त्याग धर्म : भोग अधर्म, 3. संयम धर्म : असंयम अधर्म, 4. हृदय-परिवर्तन धर्म : बलप्रयोग या प्रलोभन नहीं, 5. अनमोल धर्म : अर्थ से धर्म खरीदा नहीं जाता।

यह आचार्य भिक्षु के चिंतन, मंथन का नवनीत है। धर्म की इतनी स्पष्ट परिभाषा आचार्य भिक्षु जैसा निस्पृह व्यक्ति ही दे सकता है। दो और दो चार की तरह उन्होंने लौकिक-लोकोत्तर की भिन्न दिशाओं को अभिव्यक्ति दी। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी के शब्दों में—'मनुष्य की प्रवृत्ति के तीन निमित्त हैं—शक्ति, प्रभाव, सहजवृत्ति।' सत्ता से शक्ति, संबंध से प्रभाव और हृदय-परिवर्तन से सहजवृत्ति का उदय होता है। शक्ति राज्यतंत्र का आधार है। प्रभाव समाजतंत्र का या भौतिक जीवन का आधार है, सहजवृत्ति हृदय की पवित्रता का आधार है। वस्तुतः सहजवृत्ति ही धर्म है। ऐसे धर्म का संबंध न किसी संप्रदाय से है, न किसी संस्था या समाज से। उसका संबंध आत्मा से है।

अतः अहिंसा, संयम और तपयुक्त धर्म ही सर्वोत्कृष्ट धर्म है और सभी धर्म-संप्रदायों के शास्त्रों का सार है। ❖

संदर्भ सूची :

1. जि. चू., पृ. 14 : धृञ् धारणे अस्य धातोर्मन् प्रत्ययान्तस्येद रूपं धर्म इति।

2. वही, पृ. 15 : यस्मात् जीवं नरक तिर्यग्योनि कुमानुषदेवत्वेषु प्रपतंतं धारयतीति धर्मः। उक्तं च—
3. ठाणं, 10/35
4. निर्युक्ति गाथा, 40 : दव्वस्स पज्जवा जे ते धम्मा तस्स दव्वस्स।
5. दसवैकालिक, 1/1
6. जि. चू., पृ. 20 : मनवयण काएहिं जोएहिं दुप्पउत्तेहिं जं पाणववरोपणं कज्जइ सा हिंसा।
7. सूत्रकृतांग, 2/1/15
8. जि. चू., पृ. 15 : संजमो नाम उवरमो, रागद्दोसविरहियस्स एगिभावे भवइत्ति।
9. आचारबोध, 26, आचार्य तुलसीकृत
10. जि. चू., पृ. 15 : तवो णाम तावयति अट्ठविहं कम्मगंठि, नासेतित्ति वुत्तं भवइ।
11. भिक्षु विचार दर्शन, पृ. 85-86

❖❖

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा

3, पोर्तुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001

फोन : 22357956, 22343598 फैक्स : 033-22343666

महासभा के 90वें वार्षिक अधिवेशन की सूचना

महासभा का 90वां वार्षिक अधिवेशन आगामी मिति माघ शुक्ला 6, दिनांक 27 जनवरी, 2004 को सायं 7.00 बजे यश प्लाजा, खान्देश मिल कॉम्प्लेक्स, जलगांव (महाराष्ट्र) में होगा, जिसमें निम्नांकित विषयों पर विचार होगा—

- ❖ महासभा के 89वें वार्षिक अधिवेशन की कार्रवाई का पठन व स्वीकृति।
- ❖ महासभा के 90वें वर्ष के महामंत्री के वार्षिक प्रतिवेदन पर विचार व स्वीकृति।
- ❖ महासभा के हिसाब परीक्षक द्वारा अंकेक्षित, महासभा के 1 अप्रैल, 2002 से 31 मार्च, 2003 के तक आय-व्यय लेखा की स्वीकृति।
- ❖ आगामी दो वर्ष के लिए महासभा के अध्यक्ष, ट्रस्ट बोर्ड के ट्रस्टीगण, महासभा के बोर्ड ऑफ आरबीट्रेटर के सदस्यों का चुनाव।
- ❖ महासभा के आगामी दो वर्षों के लिए अंकेक्षक की नियुक्ति।
- ❖ आए हुए प्रस्तावों एवं सुझावों पर विचार।
- ❖ विविध—अध्यक्ष महोदय की अनुमति से।

महासभा के वार्षिक अधिवेशन में सभी सदस्यों की उपस्थिति सादर प्रार्थित है।

तरुण सेठिया
महामंत्री

जीवन और उद्देश्य

❑ समणी ऋजुप्रज्ञा ❑

'जीवन क्या है?' चिंतन के आकाश में यह प्रश्न सदियों से कौंधता रहा है। हर चिंतक ने अपने ढंग से इसका उत्तर देना चाहा, फिर भी यह प्रश्न अनुत्तरित ही रहा। जीवन को यदि भावनाओं-संवेदनाओं का घर माना जाए तो यथार्थ सिखा देगा—भावनाएं आकाश की उड़ानें हैं, जीवन को आकाश नहीं, धरती चाहिए। जीवन कोई तर्क या गणित का प्रमेय भी नहीं। जीवन को तो बहुत-से समन्वय, सामंजस्य चाहिए। जीवन और जीवन का उद्देश्य आज भी एक पहेली के रूप में सामने है। आज भी यह प्रश्न समाधान की मांग कर रहा है और आगे भी करता रहेगा।

जन्म होना और एक यात्रा शुरू हो जाना, हर एक के साथ घटित होने वाली घटना है। समय के साथ इस यात्रा का एक विराम भी होता है और इसमें कोई अपवाद भी नहीं। लेकिन कहीं-कहीं किसी की चेतना में कोई स्फुरणा होती है और वे इस यात्रा के उद्देश्य को तलाशने लगते हैं। जिज्ञासा की यह ललक उन्हें निरंतर बेचैन करती है। मैं कौन हूं? मैं यहां किस प्रयोजन से हूं? मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है? इस यात्रा के बाद मुझे कहां जाना है? प्रकृति मेरे माध्यम से किस प्रयोजन की पूर्णता चाहती है? और यह जिज्ञासा ही वह पथ बन जाती है जो मंजिल तक ले जाती है। ऐसा प्रश्न पैदा होना भी सौभाग्य का सूचक है। ऐसी जिज्ञासा ही अध्यात्म का प्रथम सोपान है।

जन्म होना और एक यात्रा शुरू हो जाना, हर एक के साथ घटित होने वाली घटना है। समय के साथ इस यात्रा का एक विराम भी होता है और इसमें कोई अपवाद भी नहीं। लेकिन कहीं-कहीं किसी की चेतना में कोई स्फुरणा होती है और वे इस यात्रा के उद्देश्य को तलाशने लगते हैं। जिज्ञासा की यह ललक उन्हें निरंतर बेचैन करती है। मैं कौन हूं? मैं यहां किस प्रयोजन से हूं? मेरे जीवन का उद्देश्य क्या है? इस यात्रा के बाद मुझे कहां जाना है? प्रकृति मेरे माध्यम से किस प्रयोजन की पूर्णता चाहती है?

एक भावना मन में रहे—वक्त जब सांसों का हिसाब मांगे तो आंखों में आंसू न हो। हर सांस सफल हो जाती है यदि उसके साथ उद्देश्य जुड़ जाता है। खाना-पीना, सोना या दूसरे आवश्यक कार्य करना ऐसी क्रियाएं हैं जो हर जीवन के साथ सहज रूप से जुड़ी हुई हैं। लेकिन उद्देश्यपूर्ण जीवन इनके लिए ही नहीं है। ये अनिवार्य प्रवृत्तियां तो हर प्राणी करता है, पर चिंतनशील मानव जीवन का उद्देश्य तलाशता है, उद्देश्य से जुड़कर प्रवृत्ति करता है। जीवन किसी परम लक्ष्य की संप्राप्ति के लिए है। आगमकारों ने कहा है—

सरीरमाहु नावत्ति जीवो वुच्चइ नाविओ।
संसारो अण्णवो वुत्तो जं तरंति महेसिणो।।

अर्थात् शरीर एक नौका के समान है। जीव नाविक है। संसार-समुद्र है। जो महर्षि हैं वे इस संसार-समुद्र को तैर जाते हैं। संसार-समुद्र का पार पा जाते हैं। संसार-समुद्र से पार पाने का तात्पर्य है—अनादि काल से चले आ रहे आत्मा-कर्म के संबंध को तोड़ देना, बंधन को तोड़ देना, कर्मों से मुक्त हो जाना, अपने शुद्ध स्वरूप को जान उसमें प्रतिष्ठित हो जाना, मोक्ष को प्राप्त कर लेना।

तत्त्व की भाषा में मोक्षप्राप्ति की बात, आत्मा के शुद्ध स्वरूप में प्रतिष्ठित

होने की बात जितनी सहज ढंग से कही, समझी या समझाई जाती है—व्यवहार में उसकी संप्राप्ति उतनी सरल नहीं। उसके लिए महान पुरुषार्थ तो कोई महावीर ही कर सकता है। यदि छत पर जाना है तो सीढ़ियों का आलंबन लेना जरूरी है। कोई भी व्यक्ति कभी एक साथ छलांग लगाकर छत पर नहीं पहुंच जाता। आत्म-विकास की दिशा में भी आगे बढ़ने के लिए कुछ सोपान हैं, जिनके आधार पर आगे बढ़ा जा सकता है।

अपने स्वभाव में आने के लिए अर्थात् अपने आत्म-स्वरूप को पाने के लिए विजातीय तत्त्वों का विवेक करना, विभाव से अपने-आप को अलग करना अपेक्षित है। जैसे कोई किराएदार किराए के मकान पर काफी समय रहने के बाद उस पर अपना अधिकार जमाने लगता है। वैसे ही अनादिकालीन कर्म-संस्कार के कारण कर्म आत्मा पर हावी हो जाते हैं और इसीलिए विभाव में भी स्वभाव का भ्रम होने लगता है। व्यक्ति क्रोध, मान, माया, लोभ, भय, हास्य, गलत चिंतन, वासना आदि को अपने स्वभाव का ही अंग मानने लगता है। व्यवहार में भी 'क्रोध' की आदत है, स्वभाव ही ऐसा है, आदि वाक्य प्रयुक्त किए जाते हैं। लेकिन वस्तुतः स्वरूप-दर्शन, स्वभाव-दर्शन की ओर जाने पर अवबोध होता है कि मैं शरीर नहीं हूं, मैं क्रोध नहीं हूं, मैं मान नहीं हूं। आत्मा का स्वभाव क्रोध नहीं, क्षमा है। जैसे किराएदार से मकान खाली कराने में बहुत प्रयास करना पड़ता है, वैसे ही कर्म के कारण जो संस्कार हमारी आत्मा पर अधिकार जमा रहे हैं, उन्हें दूर करने के लिए तीव्र पुरुषार्थ की अपेक्षा रहती है। साधक साधना की दिशा स्वीकार करता है। उपवास आदि तप के प्रयोगों से कर्म-निर्जरा, कर्म-मुक्ति का प्रयास करता है। क्षमा आदि की साधना तो उपवास आदि तपस्या से भी अधिक निर्जरा का हेतु है। क्षमा आदि के प्रयोगों के प्रति रुचि और इनकी साधना विरल है। आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने भिक्षु-गीता में लिखा है—

उपवासे सुकष्टेपि यादृशी रुचिरुत्तमा।
क्षमायां तादृशी नास्ति चित्रं किमत्र कारणम्।।

उपवास में आहार का वर्जन करना होता है, उससे शरीर को कष्ट का अनुभव भी होता है। क्षमा में ऐसा कोई कष्ट नहीं उठाना पड़ता। फिर भी आश्चर्य है कि उपवास आदि के प्रति जितनी रुचि देखी जाती है, उतनी क्षमा आदि की साधना के लिए नहीं—इसका क्या कारण है? तन को तपाना सरल है। मन को तपाना, मन को मोड़ना मुश्किल है और जब मन मुड़ जाता है तो दुनिया में मुश्किल कुछ रह नहीं जाता है। व्यक्ति क्षमा, मृदुता आदि की साधना सुगमता से कर सकता है। संकल्प व प्रयोगों की निरंतरता से मन को मोड़ा जा सकता है, विभावों को हटाया जा सकता है, स्वभाव में प्रतिष्ठित हुआ जा सकता है। अपने स्वरूप को जानने के लिए, विजातीय तत्त्वों का विवेक करने की विधि व प्रयोग भी आचार्यश्री महाप्रज्ञजी द्वारा निर्दिष्ट हैं। प्रयोग-विधि को इस प्रकार समझा जा सकता है—

अपने अतीत के दोषों से मुक्त होने के लिए वर्तमान में संयम, जागरूकता व भविष्य में पाप न करने के संकल्प के साथ 45 मिनट के लिए कायोत्सर्ग प्रतिमा के प्रयोग में बैठें। शरीर को स्थिर, शिथिल एवं तनावमुक्त करें। चित्त को कंठ कर केंद्रित करें। शिथिलता का सुझाव दें। कंठ का भाग (vocal cord) विशुद्धि केंद्र को पूरी तरह शिथिल करें। कोई विचार या हलचल पैदा न हो—ऐसा सुझाव दें। कंठ के साथ ही पूरे शरीर में शिथिलता व हलकेपन का अनुभव करें। लंबा श्वास लें, लंबा श्वास छोड़ें। बीच-बीच में श्वास का संयम भी करें। अर्थात् श्वास को जितना रोक सकें—रोकें। अपने स्वरूप को जानने के लिए विजातीय तत्त्वों का विवेक करें। चिंतन करें—मैं क्रोध नहीं हूं, क्रोध मेरा स्वभाव नहीं है। दो-तीन मिनट तक इसी बात का चिंतन करें। बीच-बीच में श्वास का संयम करते रहें। फिर क्रमशः चिंतन करें—मैं मान नहीं हूं। मान मेरा स्वभाव नहीं है। मैं माया नहीं हूं। माया मेरा स्वभाव नहीं है। इसी तरह क्रमशः लोभ, शोक, भय, घृणा, काम (वासना), मिथ्यात्व से मुक्त अपने स्वरूप का चिंतन करें। हर एक बिंदु के साथ श्वास-संयम का प्रयोग करें। दो-तीन मिनट तक अनुचिंतन करें।

वर्तमान के संयम के लिए इन विभावों से मुक्त हो निर्विकल्पता एवं निर्विचारता का अनुभव करें। श्वास-संयम करें।

अतीत का चिंतन करें—यदि मैंने अतीत में क्रोध किया हो, क्रोध का प्रसंग आया हो तो उसकी पूरी तस्वीर मन में स्पष्ट हो जाए—कब, क्यों, कहां मैंने गलती की? क्रोध मेरा स्वभाव नहीं है। प्रमाद, अज्ञान, भूलवश मैंने जो क्रोध किया—मैं अब प्रतिक्रमण करता हूं। मन-वचन-काया से उसकी आलोचना करता हूं, उससे वापस लौटता हूं। चिंतन करें—अतीत में मैंने जब भी क्रोध किया, अच्छा नहीं किया—'तस्स मिच्छा मि दुक्कड़म्।' इसी तरह क्रमशः मान, माया, लोभ, शोक, भय, घृणा, काम, मिथ्यात्व, एक-एक बिंदु का अनुचिंतन एवं आलोचन करें।

वर्तमान के संवर के साथ अनुभव करें—क्षमा, मृदुता, ऋजुता (सरलता), संतोष, अभय, आनंद, मैत्री, ब्रह्मचर्य एवं सम्यक्त्व (सम्यक् दृष्टिकोण) का विकास हो रहा है। अनागत के लिए, भविष्य के लिए प्रत्याख्यान करें—मैं क्रोध नहीं करूंगा। श्वास-संयम के साथ क्रमशः मान, माया आदि न करने का संकल्प करें। प्रयोग के अंतिम चरण में अपने स्वरूप का अनुभव करें—मैं चैतन्यमय हूं। अनुभव करें—मैं आनंदमय हूं। मेरा मानसिक स्वास्थ्य विकसित हो रहा है। मैं शक्ति-संपन्न हूं। अनुभव करें—मेरी सहिष्णुता बढ़ रही है। तीन बार नमस्कार-मंत्र के उच्चारण के साथ प्रयोग संपन्न करें।

प्रयोग की दिशा में पुरुषार्थ जुड़ता है, परिवर्तन घटित हो जाता है। जो जागता है, वही अमृत का पान करता है। यदि जीवन में अमृत का पान करना है तो प्रयोग की सुदीर्घ यात्रा चलती रहे। कहीं बाहर से नहीं, भीतर से ही अमृत प्रकट हो जाएगा। गुरुदेव तुलसी के शब्दों में—'आत्मा ही परमात्मा मेरा, टूट पड़े कर्मों का घेरा।' कर्मों का घेरा टूटते ही भीतर का भगवान प्रकट हो जाएगा, जीवन सार्थक हो जाएगा। ❖

मनोविज्ञान और अध्यात्मवाद : एक दृष्टि पृष्ठ 18 का शेष

मनोवैज्ञानिक तनाव का कारण सिर्फ परिस्थिति एवं वातावरण को ही मानते हैं। चूंकि उनकी पहुंच सिर्फ स्थूल शरीर तक है, चैतन्य की खोज वे अभी नहीं कर पाए हैं, जबकि आध्यात्मिकता की दृष्टि से परिस्थिति, वातावरण उत्तेजना के एकमात्र कारण नहीं हैं, अपितु पूर्व में किए गए कर्म भी उसके कारण हैं।

मनोवैज्ञानिक की दृष्टि से मनुष्य की प्रत्येक सेल में 46 क्रोमोसोम होते हैं। जीव-उत्पत्ति के समय 23 क्रोमोसोम के जोड़े माता और पिता के द्वारा बच्चे को प्राप्त होते हैं। इनमें से 22 जोड़े, जिन्हें ओटोसोम कहा जाता है, शरीर का निर्माण करते हैं। आखिरी एक जोड़ा लिंग-निर्धारण करता है। स्त्री में यह क्रोमोसोम 'XX' कहलाते हैं, जबकि पुरुष के क्रोमोसोम को 'XY' कहते हैं।

प्रत्येक क्रोमोसोम एक लंबे डी. एन. ए. के मोलेक्यु से बनता है। डी. एन. ए. जींस के माध्यम से शरीर की संरचना करते हैं। आंख का रंग, बाल के रंग का निर्धारण जींस ही करते हैं। जींस में होने वाली विषमता शारीरिक कमियां उत्पन्न करती है। करीब 2000 जीनेटिक कमियां प्रमुख जींस द्वारा प्रवाहित होती हैं। चूंकि जींस माता और पिता—दोनों से प्राप्त होते हैं, अतः कई बीमारियां पैतृक बीमारियां कही जाती हैं। कई बीमारियां मनुष्य वातावरण एवं परिस्थितियों से प्राप्त करता है। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के अनुसार मनुष्य में शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक भिन्नता का कारण पैतृक जींस हैं एवं बाहरी वातावरण एवं परिस्थितियां हैं। लेकिन एक साथ उत्पन्न हुए दो बच्चों में भी बहुत बड़ी स्वभाव-भिन्नता, बौद्धिक-भिन्नता, शारीरिक एवं मानसिक शक्ति-भिन्नता पाई जाती है—जिसका समाधान अभी तक मनोवैज्ञानिकों को प्राप्त नहीं है। कारण मनोवैज्ञानिक का केंद्रबिंदु सिर्फ शरीर है, जबकि आध्यात्मिक सोच इससे और आगे जाती है। सूक्ष्म और सूक्ष्मतर शरीर, जिसे कार्मण शरीर कहा जाता है, वह चैतन्य के साथ रहता है और यह कार्मण शरीर मनुष्य से मनुष्य में पाई जाने वाली भिन्नताओं का बहुत बड़ा कारण है।

सत्य केवल सत्य होता है, उसमें द्वैत नहीं होता। किसी भी माध्यम से जब व्यक्ति सत्य की खोज में, गहरे में उतरता है और सत्य का स्पर्श करता है, तब माध्यम की भिन्नताएं पीछे रह जाती हैं और सत्य उभरकर सामने आ जाता है। भगवान महावीर की 'अन्यलिंग सिद्ध' की प्रारूपणा इसी की परिचायक है। बहुत लोगों की मान्यता है कि विज्ञान ने धर्म को हानि पहुंचाई है, जनता को धर्म की भावना से दूर किया है। किंतु यह स्वर वास्तविकता से दूर प्रतीत होता है। वास्तव में विज्ञान ने धर्म की बहुत सत्यस्पर्शी व्याख्या की है और कर रहा है। जो सूक्ष्म रहस्य धार्मिक व्याख्या-ग्रंथों में अव्याख्यात हैं अथवा जिनकी व्याख्या के स्रोत आज उपलब्ध नहीं हैं, उनकी व्याख्या आज वैज्ञानिक शोधों के संदर्भ में बहुत प्रामाणिकता के साथ की जा सकती है। कर्मशास्त्र की अनेक गुत्थियों को वैज्ञानिक अध्ययन के संदर्भ में सुलझाया जा सकता है। आध्यात्मिक व्यक्ति भी गहराई में उतरे, अपना चिंतन सकारात्मक रखे। आज दर्शन और विज्ञान की संबंधित शाखाओं का तुलनात्मक अध्ययन बहुत अपेक्षित है। ऐसा होने पर दर्शन के अनेक नए आयाम उद्घाटित हो सकते हैं।

मनोविज्ञान एवं अध्यात्मवाद एक-दूसरे के पूरक हैं, बाधक नहीं। एक के बिना दूसरा अधूरा है, अपूर्ण है। इसे स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं है। अनेकांत निश्चित ही सत्य को प्रस्फुटित करता है—यही महावीर-वाणी है। इसे हमें सदैव याद रखना ही होगा। ❖

बालकथा

बेटा भी बेटी भी

❑ ❑

❑ आशा दुबे ❑

रामकिसुन आंगन में आए। उसी समय बीस दिन की बछिया आकर उनसे टकरा गई। फिर वह दूसरी ओर दौड़ गई। गौरी ने हंसकर पूछा, 'चोट तो नहीं लगी काका?'

रामकिसुन ने अपनी दाईं बांह छूकर कहा, 'अरी बिटिया! तेरे लिए इतना तो सहना ही होगा।'

'मेरे लिए? मेरे लिए क्यों काका?' गौरी ने आंखें तरेरकर पूछा।

'अरी जा तो, अपने बाबूजी को बुला। तुझे बतलाने की बात नहीं है।' कहकर रामकिसुन वहीं खाट पर जरा आराम से बैठ गए।

गौरी को बात कुछ समझ में नहीं आई। उसने बछिया को खूंटे से बांधा और अपने बाबूजी को बुलाने पिछले आंगन की ओर चली गई।

कुछ देर में गौरी के पिता जीवनलाल आ गए। अंगोछे से मुंह पोंछते हुए उन्होंने पूछा, 'क्यों पंडित, क्या खबर लाए हो?' रामकिसुन ने कहा, 'इस बार सब-कुछ ठीक-ठाक देख आया हूं जीवन। चलकर लड़के को शगुन दे आओ।'

जीवनलाल ने पास बैठते हुए

गौरी देखती कि गांव की औरतों की आंखें उसके लिए बदल गई थीं। एक दिन सुबह वह पुनिया के साथ दरवाजे के बाहर की जमीन गोबर से लीप रही थी। उसी समय रतना भौजी को पानी भरने जाना था। पास आकर, रुककर उसने गौरी से कहा, 'अरी गौरी, इतनी सुबह दरवाजे पर निकलकर क्यों बैठ जाती हो? लोगों को काम पर निकलना होता है।' गौरी चुप रही। पर पुनिया ने कह दिया, 'तुम्हें भी आने-जाने को यही रास्ता मिला है, बहू! इतनी सुबह खाली घड़ा लेकर दूसरी तरफ से नहीं जा सकती हो क्या?' रतना भौजी ने पलटकर कहा, 'ओ हो छलनी भी बोलने लगी! जिसमें सौ-सौ छेद हैं!'

कहा, 'यही बात तो तुमने पिछली बार भी कही थी। पर बात नहीं बनी। अच्छा हुआ, शादी से पहले ही पता चल गया कि लड़का जुआरी-शराबी था।

नाराज होकर रामकिसुन ने कहा, 'कैसी बात करते हो जीवन! मेरा भरोसा करो। इस बार मैंने बिटिया के लिए सही वर खोज लिया है। तुम कल तैयार रहना। मैं वहां कह आया हूं।'

इस बार लड़का देखकर जीवनलाल खुश हो गए। गौरी का विवाह पक्का कर दिया। लड़के का नाम सुमेर है। उसकी बालोद में साईकिल की दूकान है। पढ़ा-लिखा होनहार है।

गौरी के घर में ऊपरी काम के लिए पुनिया है। उसका पति सनेही खेतों के काम देखता है। तीन साल पहले गौरी की मां चल बसी थी। तब से पति-पत्नी दोनों इस घर की सेवा में लगे हैं।

गौरी का विवाह हुआ। धूम-धाम से हुआ। सारा गांव विवाह में आया था।

आज महीने-भर बाद जीवन बेटी को लेने बालोद जा रहे हैं। साथ

में सामान लादे सनेही भी पीछे-पीछे चल रहा है। वे राह में ही थे। तभी डाकिए ने आवाज दी, 'रुकिए वैद्यजी! आपका तार आया है। पहले इसे ले लीजिए।' जीवनलाल ने पलटकर दस्तखत किए। फिर बोले, 'तुम ही पढ़कर सुना दो भाई। बेटी के घर जा रहा हूं। जल्दी में हूं।'

तार पढ़कर डाकिए ने कहा, 'बेटी के घर से ही तार आया है। क्या कहूं! मुझसे कहा नहीं जाता।' घबराकर जीवनलाल उसके पास आए। तार हाथों में लेकर पढ़ा। उनकी आंखों के सामने सारी धरती घूम गई। उन्हें लगा कि दुनिया के सबसे बदनसीब आदमी वे ही हैं। वे बोल उठे, 'नहीं! मेरी गौरी विधवा नहीं हो सकती। यह झूठ है।' उनका शरीर कांपने लगा। वे गिरकर बेहोश हो गए।

गौरी पति की लाश के पास बैठी थी। वह एकटक सुमेर का चेहरा देख रही थी। उसकी आंखें नहीं झपकतीं। घर के सभी लोग सिर पटक रहे थे। छाती पीट रहे थे। गांव की औरतें गौरी का नाम लेकर खुसुर-पुसुर करने लगीं। उनकी एक-एक बात टूटी हुई चूड़ियों के समान गौरी के कानों को छेद रही थी।

कल तक गौरी और सुमेर कितने सुखी थे। पर यह सब कल की बात थी। सुमेर कल शाम को दूकान बंद कर घर वापस आ रहा था, तभी पीछे से आती मोटर ने उसे कुचल दिया। आज सुबह पुलिस ने परिवार वालों को लाश दी थी। तब से घर में कोहराम मचा हुआ था।

गौरी दस दिन तक घर की औरतों के कहे अनुसार चलती रही। उसके बाद वह चुपचाप घर के एक कोने में पड़ी रहती थी।

एक दिन उसे सनेही की आवाज सुनाई दी। वह गौरी की सास से गिड़गिड़ाकर कह रहा था, 'बिटिया को मेरे साथ भेज दीजिए। वहां उसकी बहुत जरूरत है।' जवाब में सास ने साफ-साफ सुना दिया, 'पर तुम उसे दोबारा यहां मत लाना। तभी ले जा सकते हो। हमें यहां उसकी कोई जरूरत नहीं है।'

दूसरे दिन सनेही के साथ गौरी गांव के लिए रवाना हो गई। राह में उसने सनेही से एक ही बात पूछी, 'बाबूजी क्यों नहीं आए भैया?' सनेही ने दूसरी तरफ देखते हुए जवाब दिया, 'चल तो रही हो दीदी। खुद ही देख लेना।'

घर जाकर गौरी ने जीवनलाल को खाट पर लेटे हुए पाया। बेटी को देखकर उनकी आंखों में गंगा-जमुना बहने लगी। वे उठना चाहते थे। पर शरीर केवल जरा-सा हिलकर कांप गया। सनेही ने बताया, 'बाबूजी को लकवा मार गया है।'

गौरी ने खुद को संभाल लिया। वह पुनिया और सनेही की सहायता से घर का काम-काज चलाने लगी। पिता की सेवा करती। घर से बाहर जाना उसे अच्छा नहीं लगता। पिता से उसने साफ-साफ कह दिया कि बेटी के लिए आंसू बहाने से कोई फायदा नहीं है। इससे दुख कम नहीं होगा। अच्छा है कि मन मजबूत कर वे ठीक होने की बात सोचें। धीरे-धीरे जीवनलाल ने बेटी की बात मान ली। समय गुजरने लगा।

जीवन साफ नहीं बोल पाते थे। पर गौरी उनकी बात समझ लेती थी। उसने अपने बाबूजी से पूछकर बूटियों से तेल बनाया। सनेही रोज उस तेल से जीवन लाल की मालिश करने लगा।

गौरी देखती कि गांव की औरतों की आंखें उसके लिए बदल गई थीं। एक दिन सुबह वह पुनिया के साथ दरवाजे के बाहर की जमीन गोबर से लीप रही थी। उसी समय रतना भौजी को पानी भरने जाना था। पास आकर, रुककर उसने गौरी से कहा, 'अरी गौरी, इतनी सुबह दरवाजे पर निकलकर क्यों बैठ जाती हो? लोगों को काम पर निकलना होता है।' गौरी चुप रही। पर पुनिया ने कह दिया, 'तुम्हें भी आने-जाने को यही रास्ता मिला है, बहू! इतनी सुबह खाली घड़ा लेकर दूसरी तरफ से नहीं जा सकती हो क्या?' रतना भौजी ने पलटकर कहा, 'ओ हो छलनी भी बोलने लगी! जिसमें सौ-सौ छेद हैं!'

गौरी ने पुनिया को मना कर दिया, 'सुबह-सुबह झगड़ा न बढ़ाओ। चुप भी रहो।' जाते हुए रतना भौजी ने नाक चढ़ाकर कहा, 'उंह! जैसा मुंह, वैसी बात!'

इस बात को दो-तीन दिन हुए थे। एक रात गौरी कोई किताब पढ़ रही थी। जीवनलाल गहरी नींद में सोए थे। अचानक आंगन की सांकल बजी। बाहर के कमरे में सनेही सोया था। उसी ने उठकर दरवाजा

खोला। हड़बड़ाते हुए भजन की दादी मानवती भीतर आई। आकर बोली, 'तू ही बता सनेही! अब मैं क्या करूं? बच्चा लगातार उल्टी कर रहा है। इस जीवन के रहते क्या हमारे घर में अंधेरा हो जाएगा! मुझे उसके पास ले चल। वह पत्थर के समान पड़ा रहेगा तो मेरे पोते का क्या होगा!'

आवाज सुनकर गौरी बाहर आई। उसने धीरे-से कहा, 'शोर मत करो बड़ी मां। चुप रहो। बाबूजी सो रहे हैं। तुम जानती हो वे बीमार हैं।'

नाराज होकर मानवती बोली, 'जब वैद्य ही बीमार रहेगा तो गांव वालों का क्या होगा?' गौरी ने कहा, 'वे क्या अपनी खुशी से बीमार हुए हैं, बड़ी मां? तुम तो उन्हें जानती हो। शरीर के ठीक रहते मेरे बाबूजी ने कभी आराम नहीं किया।'

बात समझकर मानवती बोली, 'तुम ठीक कहती हो बेटी। मेरी ही मति बुढ़ापे में मारी गई है। ऐसा करो, तुम ही चलो। तुम भी तो वैद्य बाप की बेटी हो। तुम ही कुछ करो।'

गौरी ने संकोच से कहा, 'पर बड़ी मां, मैं...।'

मानवती ने उसका हाथ पकड़ लिया, 'अब देर न करो बेटी। इस बुढ़िया की बात मान लो।'

हारकर गौरी ने पुनिया को जगाया। कुछ दवाएं लीं और मानवती के साथ चल दी।

रतना भौजी की गोद में उनका एक साल का बेटा था। वह बेचैनी से इधर-उधर घूम रही थी। उसकी आंख से आंसू थमते नहीं थे। सास के साथ गौरी को देखते ही बोली, 'देख गौरी, इसे देख। शाम को हंस-खेल रहा था। अब इतनी रात को इसने सारा दूध उलट दिया। सुस्त हो गया है। देखो न। बारबार उल्टी हो रही है। अब मैं क्या करूं?'

गौरी ने कहा, 'भाभी, लाओ इसे मुझे दे दो। तुम जाकर एक गिलास पानी, थोड़ा नमक और जरा-सी शक्कर ले आओ।'

हड़बड़ाकर रतना ने गौरी की गोद में बच्चा डाल दिया। वह रसोई की ओर चली गई।

गौरी ने पानी, नमक और शक्कर का घोल बनाया। फिर बच्चे को चम्मच से पिलाने लगी। बच्चे को फिर से उल्टी हुई। गौरी धीरज के साथ थोड़ी-थोड़ी देर में उसे घोल पिलाती रही। आंख में आंसू लिए रतना गौरी को देख रही थी। वह सोच रही थी। आज अगर गौरी न आती तो जाने क्या गजब हो जाता।

सुबह तक बच्चे को आराम मिल गया। उसे रतना की गोद में देकर गौरी वापस आ गई।

घर आकर गौरी ने विचार किया। क्यों न वह और पढ़े? उसके बाबूजी के पास इतनी किताबें, जड़ी-बूटियां और ज्ञान हैं। इन सबको वह बेकार न जाने देगी। इनसे वह गांव के जरूरतमंद लोगों की मदद करेगी।

एक दिन गौरी पिता के पैरों की मालिश कर रही थी। तभी उसने अपने मन की बात कह दी। जीवनलाल ने खुशी-खुशी 'हां' में सिर हिला दिया। फिर मुंह से कुछ कहने की कोशिश करने लगे। गौरी ने ध्यान से सुना। वे कह रहे थे, 'तुम बेटी भी हो और बेटा भी।' सुनकर गौरी खुश हुई।

गौरी हाईस्कूल तक पढ़ी हुई थी। उसने सोच लिया कि वह आगे पढ़ेगी। परीक्षा देने शहर जाएगी।

अब गौरी के लिए समय बोझ नहीं था। घर के काम-काज करती। पढ़ती-लिखती और खेतों को भी देखती। पांच साल में उसने आयुर्वेद की पढ़ाई पूरी कर ली।

जीवनलाल की तबीयत भी सुधरने लगी थी। वे लकड़ी के सहारे खड़े हो सकते थे। पहले से उनकी आवाज साफ हो गई थी। उनके मन में कभी-कभी बेचैनी होती। इस उमर में बेटी का विधवा होना और सब सुखों से अलग रहना उन्हें दुखदाई लगता था। इस विषय में अगर वे गौरी से बात करते, तो वह मना कर देती।

अचानक एक दिन गौरी के मामा लीलाधर आए। बड़ी देर तक वे जीवनलाल से दुनिया-भर की बातें करते रहे। फिर बातों का रंग जमा देखकर बोले, 'जीजा! गौरी के बारे में कुछ सोचते क्यों नहीं हो? तुम्हारे बाद उसका क्या होगा? कभी सोचा है? तुम चाहो तो मैं एक जगह बात बना सकता हूं।'

आंख उठाकर जीवन ने उसे देखा। लीलाधर ने फिर कहा, 'मेरी बड़ी बहू के भाई किशोर को तुम जानते हो, पहली जचकी में जिसकी घरवाली मर गई थी। वह गौरी से शादी करने को तैयार है। अब दुनिया बदल गई है जीजा। देखो, ना मत कहना।'

गौरी अपने मामा के लिए चाय लेकर आ रही थी। उसने यह बात सुन ली। लीलाधर के हाथ में चाय का गिलास देकर बोली, 'उसको अभी विवाह की साध बाकी है मामाजी! हम लोग किशोर को खूब जानते हैं। शराब के नशे में उसने अपनी गर्भवती पत्नी को मार डाला था। खबरदार, जो बाबूजी को बहकाया। मां को मरे कितने साल हो गए हैं? आज आए हो तो मन में भले विचार भी नहीं हैं!'

लीलाधर ने भांजी को डांटकर कहा, 'लड़कियों का इतना मुंहजोर होना अच्छा नहीं होता, गौरी। बड़ों के बीच में तुम मत बोलो।'

गौरी बोली, 'मुझे भी इस तरह बात कहना भला नहीं लगता, मामाजी। पर आप भी तो बड़ों के समान बात नहीं कर रहे हैं।'

अब लीलाधर ने जीवन की ओर मुंह उठाकर कहा, 'आप बोलिए जीजा! आपको तो मेरी बात जम गई न?'

गुस्से से जीवन की आंखें लाल हो रही थीं। दरवाजे की ओर हाथ दिखाकर लीलाधर से बोले, 'जाओ, चले जाओ।'

लीलाधर के जाने के बाद गौरी पिता के सिरहाने बैठ गई। उनका सिर सहलाने लगी। थोड़ी देर बाद बोली, 'बाबूजी, मेरे आने वाले समय के लिए तुम चिंता मत करो। मां नहीं रही तब तुमने अपना जीवन गांव की सेवा में लगा दिया। कितना सुख, कितना संतोष तुम्हें मिलता था। तुम खुश रहते थे। मुझे तुम्हारे काम को आगे बढ़ाना है। मैं गांव वालों की दुख-तकलीफ में सेवा करूंगी। बाबूजी, मैं विवाह नहीं करूंगी। सारा जीवन तुम्हारे दिए ज्ञान का लाभ गांव वालों को दे सकूं, बस, यह छोटा-सा आशीष आज मुझे दे दो।'

खुली हुई खिड़की से जीवन ने आकाश की ओर देखा। उनका हाथ धीरे-धीरे उठा। वे बेटी के सिर पर आशीष बरसाने लगे। ❖

धर्मेण हीनाः पशुभिः समाना पृष्ठ 42 का शेष

उनके धर्म की शरण में ही जाओ, उसी प्रकार मोंटेसरी पद्धति भी अपने चरणों में तीनों प्रकार से शरण मांगती हो—पर ऐसा कुछ है नहीं। बड़ी ही सरल-सहज पद्धति है यह। इसकी अपेक्षाएं विनम्र हैं, बालक को स्वतंत्रता दो और स्वयं स्फुरित प्रवृत्तियां करने दो, प्रेम से उसका लालन-पालन करो और यह मानकर चलो कि ईश्वर के अलावा यह किसी और का अधिकार नहीं कि वह दूसरों के व्यक्तित्व का निर्माण कर सकता है। पर इस पद्धति में एक विशेष बात है कि मानव-जीवन के उद्धार के सभी तत्त्व इसमें आ गए हैं। इन समस्त सिद्धांतों को सिद्ध करने में भले ही युगों के युग लग जाएं, पर उनके बिना छुटकारा नहीं है।

मोंटेसरी पद्धति के विचारों का यह क्षीण प्रवाह अभी भागीरथी के जैसा है। अभी-अभी यह हिमालय से निकली है। काल के प्रवाह के साथ इसकी धारा आगे चलकर विपुल, विस्तृत व मनुज-पावनी बनेगी, ऐसा विश्वास है। हम क्षुद्र हैं, हमारे प्रयत्न बौने हैं, पर हमारी आशाएं महान हैं। आइए, हम मानव-उद्धार के यज्ञ की पहली आहुति दें और जीवन को सार्थक करें। जीवन-उद्धार के कार्य में जीवनोद्धार ही है। ❖

अनुवाद : **रामनरेश सोनी**

भयमुक्त होने के लिए, जड़ता को तोड़ने के लिए, हमें सत्ता के वर्गों की ओर नहीं, एक-दूसरे की ओर देखना है, एक-दूसरे के लिए जीना है। सत्य को पाना बहुत कठिन है पर उसकी खोज में निकल पड़ना बहुत बड़ी सफलता है, वही सफलता हमारा लक्ष्य होना चाहिए, यही सफलता पाने के प्रयत्न में हम सत्ता को सही रूप दे सकेंगे। धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक—सभी प्रकार की सत्ता को; बस यह याद रखना होगा कि जो छोटा है वही द्वैत का शिकार होता है।

—विष्णु प्रभाकर

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, कोलकाता

संबोधन अलंकरण समारोह

जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा मर्यादा महोत्सव के अवसर पर प्रतिवर्ष समाज के उन वरिष्ठ श्रावक-श्राविकाओं को अलंकरण प्रदान कर सम्मानित करती है, जिन्हें युगप्रधान आचार्यश्री महाप्रज्ञजी ने उनकी जीवनगत श्रेष्ठताओं का मूल्यांकन करते हुए विशेष संबोधन से संबोधित किया है। इसके साथ ज्ञानशाला प्रोत्साहन पुरस्कार भी प्रदान किया जाता है। इस वर्ष जलगांव में आयोजित मर्यादा महोत्सव के अवसर पर दिनांक 26 जनवरी, 2004 को महासभा द्वारा अलंकरण व पुरस्कार प्रदान कर उन्हें सम्मानित किया जाएगा। सम्मान प्राप्त करने वाले श्रावक-श्राविकाओं अथवा उनके निकटतम परिवारजनों के सम्मान में दिनांक 25 जनवरी, 2004 को सायंकाल एक 'मिलन संगोष्ठी' का आयोजन भी किया गया है। उक्त दोनों कार्यक्रमों में सपरिवार उपस्थित रहने हेतु सादर निवेदन है।

सुरेन्द्र चोरड़िया	**भंवरलाल सिंघी**	**तरुण सेठिया**
अध्यक्ष	संयोजक	महामंत्री

पूज्यवर द्वारा संबोधन प्राप्त श्रावक-श्राविकाओं की सूची—

क्र.सं.	नाम	स्थान	अलंकरण
1.	श्री श्रीचंद बैंगानी	सुजानगढ़	शासनसेवी
2.	श्री झूमरमल बैंगानी	बीदासर	शासनसेवी
3.	श्री कन्हैयालाल छाजेड़	श्रीडूंगरगढ़	शासनसेवी
4.	स्व. शिवराजजी कोठारी	हैदराबाद	शासनसेवी
5.	स्व. पारसमलजी भूरचंदजी पारख	अहमदाबाद	शासनसेवी
6.	श्री कन्हैयालाल जैन पटावरी	दिल्ली	शासनसेवी
7.	श्री उत्तमचंद सेठिया	जयपुर	शासनसेवी
8.	श्री सागरमल बरड़िया	जयपुर	शासनसेवी
9.	श्री जसवंतराय जैन	दिल्ली	शासनसेवी
10.	डॉ. सूरजमल दूगड़	जयपुर	शासनसेवी
11.	स्व. मोहनलालजी संचेती	मोमासर	शासनसेवी
12.	स्व. मन्नालालजी सुराणा	जयपुर	शासनसेवी
13.	स्व. बलवंतराजजी भण्डारी	जोधपुर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
14.	श्री हंसराज कोठारी	चूरू	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
15.	डॉ. रतनचन्द्र जैन	मुंबई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
16.	श्री विरधीचंद सेठिया	जालना	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
17.	स्व. पूरणमलजी टांटिया	चैन्नई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
18.	स्व. भूरामलजी गोखरू	गंगापुर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
19.	श्री रिखबचंद सुराणा	गुवाहाटी	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
20.	स्व. प्रेमसागरजी जैन	हांसी	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
21.	स्व. ओगड़मलजी सुराणा	मुंबई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
22.	श्री हमेरलाल धाकड़	मुंबई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
23.	श्री गोटूलाल बडाला	मुंबई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक

क्र.सं.	नाम	स्थान	अलंकरण
24.	श्री तखतमल कोठारी	मुंबई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
25.	श्री रावतमल बांठिया	चूरू	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
26.	श्री मगनलाल धींग	मुंबई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
27.	स्व. रमणीकभाईजी झवेरी	मुंबई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
28.	स्व. लाला खुशीरामजी जैन	हांसी	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
29.	स्व. प्रसन्नलालजी जैन	हांसी	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
30.	स्व. लक्ष्मीचंदजी चौपड़ा	हिरियूर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
31.	स्व. उमरावमलजी भंडारी	चैन्नई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
32.	स्व. फूलचंदजी बाफना	मुंबई	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
33.	स्व. श्रीचंदजी कोठारी	चूरू	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
34.	स्व. लाला रणजीतसिंहजी जैन	टोहाना	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
35.	स्व. नरेशकुमारजी गोयल	दिल्ली	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
36.	श्री श्रीचंद संचेती	दिल्ली	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
37.	श्री मन्नालाल बरड़िया	सरदारशहर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
38.	श्री शंकरलाल परमार	बोरज	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
39.	श्री रतनलाल चौपड़ा	गंगाशहर	श्रद्धानिष्ठ श्रावक
40.	श्रीमती कान्ता रमणीकभाई झवेरी	मुंबई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
41.	श्रीमती निर्मला जैन	जगराओ	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
42.	श्रीमती झमकूदेवी चौपड़ा	सूरत	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
43.	श्रीमती संतोषदेवी उमरिया	मुंबई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
44.	स्व. इचरजकंवर भंडारी	जोधपुर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
45.	स्व. मनोहरीदेवी दूगड़	बीदासर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
46.	श्रीमती बलूदेवी चोरड़िया	छापर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
47.	स्व. धनपतिदेवी बैद	अहमदाबाद	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
48.	स्व. सायरदेवी कर्नावट	नमाणा	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
49.	श्रीमती भंवरीदेवी छाजेड़	गंगाशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
50.	श्रीमती सुंदरदेवी सेठिया	गंगाशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
51.	श्रीमती मीना सुराणा	सरदारशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
52.	श्रीमती प्रेम सिसोदिया	मुंबई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
53.	श्रीमती अंजनाकिरण शाह	मुंबई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
54.	श्रीमती सुशीलादेवी कच्छारा	मुंबई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
55.	श्रीमती प्रकाशदेवी तातेड़	मुंबई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
56.	स्व. लक्ष्मीदेवी सिंघी	श्रीडूंगरगढ़	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
57.	स्व. शांतिदेवी गधैया	सरदारशहर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
58.	स्व. सुशीलादेवी गटागट	लातुर	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
59.	स्व. सोहनीदेवी तातेड़	मुंबई	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति
60.	स्व. सुन्दरदेवी पगारिया	लाडनूं	श्रद्धा की प्रतिमूर्ति ❖

With best compliments from :

Inderchand Ashok Naman Bohara
Goutham Arihant Bafna

BOHARA METAL PRODUCTS

SRRI MILAN IMPEX

Manufacturer Exporter of Stainless Steel Utensils & Cutlery

Registered Office :
 # 204, Triplicane High Road
Chennai 600005
Phone : 0091-44-28481014

Administrative Office :
 # 304, Mint Street
Chennai 600003
Phone : 0091-44-25357767 Fax : 25332142

Works :
 # G 17, Vyasarpadi Industrial Estate, E. H. Road
Chennai 600039
Phone : 0091-44-25520681

Mobile : 98840 17000 / 98841 17000
e-mail : boharametal@satyam.net.in

जैन भारती, जनवरी, 2004 ■ भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पं. सं. : आर जे/डब्ल्यू आर /11/48/03-05

We owe it to you Customers !

It is easy to be No. 1, but difficult to remain there. But, we have been doing it for the past 5 years with our dedicated services and thanks to the invaluable support & trust in us by our valued customers. With promptness in-built, we have been serving the Indian Industries tirelessly against their requirements of **Bearings, Grease, Seals, Blocks, Sleeves & accessories** and **a variety of Maintenance Products** and **Condition Monitoring systems of SKF.** The New Millennium is on; an era that will bring forth a fresh batch of discoveries, newer wonders in technology, a greater fillip to standards of life as a whole. Rest assured, Premier (India) Bearings Limited will remain very much a participant to this absorbing, all-engaging process and will be there with you to meet your requirements.

SKF

Bearing is not our only business.

CR

Premier (India) Bearings Limited

(India's No. 1 SKF Industrial Distributors)

25 Strand Road, 4th Floor, Kolkata 700001, Ph-2220-1926/0640, Fax-22485745, Email-pibl@vsnl.com

Branches at - Mumbai, Chennai, Bangalore, New Delhi, Chandigarh & Haldia

तरुण सेठिया, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1 के लिए जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं सांखला प्रिण्टर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।